VISHVA-JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2021 TO 31.12.2023)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

72वां वर्ष, अंक 9, दिसम्बर, 2023

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. प्रेमलाल शर्मा, शास्त्रचूड़ामणि, वी.वी.आर.आई, साधु आश्रम, होशियारपुर

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com

vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेषः स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति निःशुल्क नियमतः भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति निःशुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को निःशुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रुः विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रुः तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रुः तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रुः तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेषः- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७२ } होश्यारपुर, मार्गशीर्ष, २०८०; दिसम्बर २०२३ { संख्या-९

मम देवा विहवे सन्तु सर्व, इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु, मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन्।।
(ऋ. १०,१२८,२)

ललकार पड़ने पर इन्द्रसहित मरुद्-गण, विष्णु और अग्नि- सब देवता मेरी (पीठ ठोंकने वाले) हों, विशाल क्षेत्र वाला मध्य लोक मेरे (अनुकूल)हो, (और) वायु मेरे प्रति (अनुकल हो कर) चले, (ताकि) मेरी (प्रचिन्तित) कामना (पूरी हो)।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

मात्रा-स्पर्शास् तु कौन्तेय शीतोष्ण-सुख-दुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास् तांस् तितिक्षस्व भारत।।
(गीता. २.१४)

हे कुन्ती-सुत (अर्जुन), जब इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध (होता है, तब वे) सर्दी, गर्मी, सुख और दुःख (आदि द्वन्द्वों की प्रतीतियों) को पैदा करते हैं। (इन्द्रियों का उस-बस विषय के साथ होने वाला यह सम्बन्ध) बराबर बनता और टूटता चला जाता है, (यह) किसी स्थिर स्वरूप को धारण नहीं कर पाता। हे भरत-वंशज (अर्जुन), इन (होते और चले जाते रहने वाले अनित्य ऐन्द्रियिक संसर्गों और उनसे उपजे द्वन्द्वों) को सहने का बल अपने अन्दर धारण करो।

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
स्व. साध्वी सुरभि महाराज	पुण्य-पाप तथा विपाकसूत्र	लेख	७
श्री कर्मबीर सिंह सिहाग	सामाजिक उत्थान में वैदिक साहित्य का योगदान	लेख	१२
डॉ. संजीव कुमार	संत कबीरदास की भक्ति-भावना	लेख	१६
डॉ. रघुबीर सिंह बोकन	हिन्दी की सांस्कृतिक विरासत	लेख	२१
डॉ. सञ्जय कुमार	लहरीदशकम् और सामाजिक सन्दर्भ	लेख	२७
सुश्री स्नेह लता	प्रभु श्रीराम की अयोध्या-रामचरितमानस में	लेख	३५
श्री संदीप कुमार शर्मा	वर्तमान समय में मूल्यशिक्षा की आवश्यकता	लेख	४०
श्री सीताराम गुप्ता	आत्मघाती है पर संपदा अथवा प्रकृति विनाश करना	लेख	४४
श्री कृष्ण कुमार 'कनक'	फिर जाते तो अच्छा था	कविता	४७
श्री कृष्णचन्द्र टवाणी	कैसी दिवाली है ?	कविता	४८
	पुस्तक-समीक्षा		४९
	संस्थान-समाचार		५०
	पुण्य-पृष्ठ		५१-५४

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

पुण्य-पाप तथा विपाकसूत्र

- स्वर्गीय साध्वी सुरभि महाराज

क्रमशः :-

देवों में काम-भोग की प्रवृत्ति-

नौवें देवलोक के देवताओं को जब काम भोग की इच्छा होती है, तब वे पहले देवलोक की अपरिगृहीता देवियों जिनकी आयु तीस पल्योपम से एक समय अधिक से चालीस पल्योपम तक की होती है, उनका भोग करते हैं। इस देवलोक के देव जब अपने स्थान पर भोग की इच्छा करते हैं तो देवियों का मन देवों की ओर आकर्षित हो जाता है। तब वे देव उनके विकार युक्त मन का अवधिज्ञान से अवलोकन करते ही तृप्त हो जाते हैं।[1]

प्राणत देवलोक और विपाक सूत्र-

आठवें देवलोक की सीमा से पाव रज्जु ऊपर घनाकार विस्तार में मेरु से उत्तर दिशा में दसवां प्राणत देवलोक है। इस देवलोक के देवों की जघन्य आयु उन्नीस सागरोपम और उत्कृष्ट बीस सागरोपम की है।[2]

इस देवलोक के इन्द्र का गेंडा (खड्ग) चिह्न है, जो कि उसके मुकुट पर स्थित होता है।[3] विपाक सूत्र में इस देवलोक में किसी भी जीव के जाने का वर्णन नहीं मिलता।

आरण देवलोक और विपाक सूत्र-

नौवें और दसवें देवलोक की सीमा से आधा रज्जु ऊपर, दस रज्जु घनाकार विस्तार में, मेरु से दक्षिण दिशा में, ग्यारहवां आरण देवलोक है। इस देवलोक का आकार आधे चन्द्रमा के समान है।[4]

प्रतर और आन्तरे-

इस देवलोक में चार प्रतर और तीन आन्तरे हैं।[5]

विमानों की संख्या-

यद्यपि आरण देवलोक के विमानों की संख्या निश्चित रूप से तो नहीं कही गई है किन्तु आरण और अच्युत दोनों देवलोकों के मिलकर तीन सौ विमान हैं। यह विमान एक हजार योजन ऊँचे और बावीस योजन की अंगनाई (नींव) वाले हैं।[6]

देवों की आयु- ग्यारहवें देवलोक के देवों की जघन्य आयु बीस सागरोपम और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की है।[7]

देवों के शरीर का वर्ण- आरण देवलोक के देव गोले महुए के वर्ण वाले होते हैं।[8]

लेश्या- ग्यारहवें देवलोक के देवों में शुक्ल लेश्या होती है।[9]

देवों में दृष्टियां- इस देवलोक के देवता तीन दृष्टियों के धारक होते हैं-१.सम्यग्दृष्टि,२.

मिथ्यादृष्टि, ३. मिश्र दृष्टि[१०]

देवों के शरीर का परिमाण- इस देवलोक के देवताओं के शरीर की अवगाहना तीन हाथ की है।[११]

सामानिक देवता- ग्यारहवें देवलोक में दस हजार सामानिक देवता रहते हैं।

आत्मरक्षक देवता- इस देवलोक के चालीस हजार आत्म रक्षक देवता होते है।[१२]

चिह्न- ग्यारहवें देवलोक के इन्द्र का वृषभ चिह्न होता है। यह चिह्न उनके मुकुट पर होता है।[१३]

परिषादों में देवों की संख्या- इस देवलोक में देवताओं की तीन तरह की परिषद् होती है- १. आभ्यन्तर परिषद्, २. मध्यम परिषद्, ३. बाह्य परिषद्।

१. आभ्यन्तर परिषद्- ग्यारहवें कल्प में देवताओं की आभ्यन्तर परिषद् में संख्या एक सौ पच्चीस होती है।

२. मध्यम परिषद्- इस देवलोक की मध्यम परिषद् में देवों की संख्या ढाई सौ होती है।

३. बाह्य परिषद्- इस परिषद् में देवों की संख्या पाँच सौ होती है।[१४]

देवों में काम भोग की प्रवृत्ति- ग्यारहवें देवलोक के देवों को जब भोग विलास करने की इच्छा होती है तब वे देव अपने स्थान पर ही प्रथम देवलोक की अपरिगृहीता देवियों के विकारयुक्त मन को उनकी ओर आकर्षित हुए जानकर अर्थात् अवधिज्ञान से अवलोकित करते ही तृप्त हो जाते हैं। इन देवियों की आयु चालीस पल्योपम से एक समय अधिक से पचास पल्योपम तक होती है।[१५]

अच्युत देवलोक और विपाक सूत्र- नौवें और दसवें देवलोक की सीमा से आधा रज्जु ऊपर दस रज्जु घनाकार विस्तार में, मेरु से उत्तर दिशा में बारहवां अच्युत देवलोक अवस्थित है। बारहवें देवलोक के देवों की जघन्य आयु इक्कीस सागरोपम और उत्कृष्ट बावीस सागरोपम की है।[१६]

इस देवलोक के इन्द्र का चिह्न विडिम है जो कि उनके मुकुट पर होता है।[१७] विपाक सूत्र में अच्युत देवलोक में किसी भी जीव के जाने का वर्णन नहीं मिलता।

उपर्युक्त बारह कल्पोपपन्न स्वर्गों के अतिरिक्त चौदह देवलोक कल्पातीत कहलाते हैं। वे इस प्रकार है- १. नव ग्रैवैयक, २. पांच अनुत्तर विमान[१८]

१. नव ग्रैवेयक और विपाक सूत्र- लोकपुरुष की ग्रीवा (गर्दन) पर स्थित होने से ये विमान ग्रैवेयक कहलाते हैं। ग्यारहवें-बारहवें देवलोक की सीमा से दो रज्जु ऊपर और आठ रज्जु घनाकार विस्तार में, गागर बेबड़े के आकार, एक दूसरे के ऊपर आकाश के आधार पर ग्रैवेयक देवलोक स्थित है। इनके तीन त्रिक में नौ प्रतर होते हैं। सबसे पहले नीचे की त्रिक आती है[१९] उनके नाम इस प्रकार है- १. भद्र, २. सुभद्र, ३. सुजात, इसमें एक सौ ग्यारह विमान हैं।[२०] पहली त्रिक से असंख्यात योजन ऊपर दूसरी (मध्यम) त्रिक से असंख्यात योजन ऊपर दूसरी (मध्यम) त्रिक है। इनके नाम इस प्रकार हैं- ४.

सुमानस, ५. प्रियदर्शन, ६. सुदर्शन, इसमें एक सौ सात विमान है।[२१] इसमें असंख्यात योजन ऊपर तीसरी (उपरिम) त्रिक है। इनके नाम ये हैं- ७. अमोघ, ८. सुप्रतिबद्ध, ९. यशोधर, इस त्रिक में सौ विमान होते है।[२२]

ये सभी विमान एक हजार योजन के ऊँचे और बाईस योजन की अंगनाई (नींव) वाले होते हैं।[२३] इन विमानों का वर्ण सफेद होता है।[२४]

शरीर परिमाण- नवग्रैवेयक देवलोक के देवों के शरीर का परिमाण दो हाथ का है।[२५]

देवों में लेश्या - नवग्रैवेयक देवों में शुक्ल लेश्या होती है।[२६]

देवों में दृष्टियां- नवग्रैवेयक देवलोक के देव सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि अर्थात् मिश्रदृष्टि इन तीनों प्रकार की दृष्टियों के धारक होते हैं।[२७]

नवग्रैवेयक की आयु स्थिति[२८] -

ग्रैवेयक संख्या	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
पहला	२२ सागरोपम	२३ सागरोपम
दूसरा	२३ सागरोपम	२४ सागरोपम
तीसरा	२४ सागरोपम	२५ सागरोपम
चौथा	२५ सागरोपम	२६ सागरोपम
पांचवां	२६ सागरोपम	२७ सागरोपम
छठा	२७ सागरोपम	२८ सागरोपम
सातवां	२८ सागरोपम	२९ सागरोपम
आठवां	२९ सागरोपम	३० सागरोपम
नौवां	३० सागरोपम	३१ सागरोपम

विपाक सूत्र में नव ग्रैवयकों का वर्णन नहीं मिलता।

पाँच अनुत्तर और विपाक सूत्र-

ग्रैवेयक की सीमा से एक रज्जु ऊपर, छह रज्जु घनाकार विस्तार में, चारों दिशाओं में चार विमान हैं। ये विमान ग्यारह सौ योजन ऊँचे इक्कीस सौ योजन की अंगनाई (नींव) वाले तथा असंख्यात योजन लम्बे-चौड़े हैं। इन चारों विमानों के मध्य में एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा और गोलाकार पांचवां विमान होता है।[२९] इन पांचों विमानों के नाम इस प्रकार हैं- कर्मबन्धों का उदय एक न एक दिन होना अवश्य ही था परन्तु उन कर्म बन्धों का उदीरणा हेतु के कारण ही वे अपने जाल में स्वयं फँसे हुए देखे गये हैं। अथवा सुख विपाक के पात्र[३०] जो इसी भव में नारकादि में न जाकर शुभ कर्म बन्धों के उदीरण के कारण सीधे स्वर्ग जाते हैं। उनका तिर्यञ्च अथवा नरक गति प्राप्त होती नहीं देखी जाती।

८. उपशमन- इसका अर्थ है- उपशांत अथवा शांत करना। जैसे- निर्मली (फिटकरी) आदि डालने से पानी की गन्दगी तली में नीचे बैठ जाती है और पानी स्वच्छ साफ दिखाई देने लगता है, इसी प्रकार कर्म का सर्वथा उदय न होने की दशा को उपशमन कहा जाता है। उपशमन का क़ाल पूरा होने पर कर्म पुन: उदय में आकर अपना काम करने लगता है, अर्थात् फल देने लगता है।[३१]

रानी पद्मावती और पुरोहित बृहस्पतिदत्त का[३२] परस्पर सम्बन्ध कई वर्षों तक चलता रहा किन्तु राजा को इस सम्बन्ध का पता नहीं चला। इसका कारण कर्म की वह स्थिति (उपशम) थी जो इस सम्बन्ध पर पर्दा डाले हुए रही है। परञ्च अन्त में तो उन्हें कर्म विपाक का सामना करना ही है।

इससे स्पष्ट है कि कर्म की उक्त सत्ता और उपशमन में अन्तर स्पष्ट है। सत्ता स्थिति में कर्म विपाक स्वाभाविक रूप से स्थगित रहता है, जबकि उपशमन में कर्मविपाक को स्थगित किया जा सकता है।[३२]

९. निधत्ति- यह कर्मबन्ध की ऐसी कठोर अवस्था होती है, जो कि उदीरणा तथा संक्रमण की पहुँच के बाहर है। परन्तु इस अवस्था में उद्‌वर्तन अपवर्तन हो सकते हैं।[३३] इस स्थिति में तो कठोर अवस्था रूप निधत्ति में तो कर्मफल भोगने पर ही उसकी निर्जरा संभव है। यह बात दु:ख विपाक के सभी पात्रों पर घटित होती है।

१०. निकाचना- कर्म की वह अवस्था निकाचना कहलाती है जिसमें उद्‌वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण और उदीरणा सम्भव ही न हों। अर्थात् आत्मा ने जिस रूप में कर्म बांधा हो, प्राय: उसी रूप में उसे अनिवार्य रूपेण भोगना ही पड़ता है। बिना भोगे उसकी निर्जरा नहीं होती। इसे नियति भी कह सकते हैं। किसी किसी कर्म की यह अवस्था भी होती है।[३४] निधत्ति की उच्चतम विकास स्थिति को निकाचना कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। विपाक सूत्र में वर्णित सामर्थ्यशाली व्यक्तियों[३५] नन्दिषेण एवं अभग्रसेन के वृत्तान्त से यह स्पष्ट ही हे कि जिन्हें इस कर्म स्थिति का सामना करना पड़ा था।

जैन कर्म साहित्य में कर्मों की इन अवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का जैसा विश्लेषण है, उतना अन्य दार्शनिकों के साहित्य में दृग्गोचर नहीं होता। योग दर्शन में नियत विपाकी[३६],अनियत विपाकी और आवागमन के रूप में कर्म की त्रिविध दशा का उल्लेख किया गया है। नियतिविपाकी कर्म का अर्थ है- जो नियत समय पर अपना फल देकर नष्ट हो जाता है। अनियतविपाकी कर्म का अर्थ है जो कर्म बिना फल दिये ही आत्मा से पृथक् हो जाते हैं और आवागमन का अर्थ है एक कर्म का दूसरे में मिल जाना। योगदर्शन की इन त्रिविध अवस्थाओं की तुलना क्रमश: निकाचित् प्रदेशोदय और संक्रमण के साथ की जाती है।

---

१. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. १०८

२. वही, पृ. १०६

३. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.३.१९८ पृ. ५३४
४. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. १०६ ५. वही
६. वही ७. वही ८. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.३.२०१ (ई) पृ. ५४८
९. वही, पृ. ५४९ १०. वही ११. वही, पृ. ५४८
१२. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. १०७ १३. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.३.१९८ पृ. ५३४
१४. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. १०७ १५. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. १०८
१६. वही, पृ. १०६ १७. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.३.१९८ पृ. ५३४
१८. त. सू. (के. मु.) ४. २० (विवेचन) १९. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. ११०
२०. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. ११० २१. त. सू. (के. मु.) ४. २० (विवेचन)
२२. वही २३. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. ११०
२४. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.३.२०१ (ई.) पृ. ५४८
२५. वही, पृ. ५४९ २६. वही २७. जीवा. भि. सू. (डा. रा. मु.) ३.३.२०१ (ई) पृ. ५४९
२८. जै. त. प्र. (अ. ऋ. जी.) पृ. ११० २९. वही, पृ. १११
३०. वि. सू. (सुख) ४; ५; ६; ७; ८; ९
३१. त. सू. (के. मु.)४. २०(विवेचन)आत्म. मी., पृ. १३० कर्म ग्रन्थ, प्र. भा., प्रस्ता. पृ. ६३
३२. वि. सू. (दु:ख) ५.५
३३. जै. द. - न्या. वि. मु., पृ. ३५० ; त. सू. - (के. मु.) ८.४ (विवेचन)
३४. आत्म. मी., पृ. १३१; त. सू. (के. मु.) ८.४ (विवेचन) कर्म ग्रन्थ - प्रभा., प्रस्ता. पृ. ६४
३५. वि. सू. (दु:ख) ३.२०; ६.६ ३६. जै. द. स्व. और विमे. (दे. मु.) पृ. ४९३

- चन्दा जैन आश्रम, करताराम गली, वेणी प्रसाद के समाने,
निकट ठाकुरद्वारा, लुधियाना।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. ९
दिसम्बर ,२०२३

सामाजिक उत्थान में वैदिक साहित्य का योगदान

- कर्मबीर सिंह सिहाग

'वेद' आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ज्ञानराशि के अक्षय आकर ग्रन्थ हैं। वे हमारी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला आदि सभी तत्त्वों को अपने अन्दर समाहित किए हुए हैं। वैदिक उपदेश समाज का सुख, शांति उत्साहयुक्त एवं प्रसन्नतापूर्वक जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हैं। वे धर्म-अर्थ-काम एवं मोक्ष के प्रतिपादक कहे गये हैं। भगवान् मनु 'वेद' को सम्पूर्ण धर्म तत्त्व का मूल मानते हैं - **वेदऽखिलोधर्ममूलम्।**[1] वेद प्रत्येक प्राणी के लिए सत्य के मार्ग का प्रकाशन करता है। इसलिए वेद का स्पष्ट आदेश है- **मनुर्भव**[2] अर्थात् मनुष्य बनो। प्रत्येक व्यक्ति सच्चा इंसान बनने पर ही समाज एवं राष्ट्र का विकास एवं कल्याण कर सकता है। मनुष्य समाज की वह इकाई है जिसकी उन्नति अवनति, उत्कर्ष-अपकर्ष से समाज की प्रगति निर्धारित होती है। मानवता एक उदात्त भावना है। इसमें स्वार्थ एवं संकीर्णता का कोई स्थान नहीं है। भारतीय ऋषियों की यह उद्घोदोषणा विश्व के समस्त मानव समाज के लिए थी कि पृथ्वी के समस्त मानव सुखी हों-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।[3]

वर्तमान में राष्ट्रीय-एकता का अभाव दिखाई दे रहा है। परञ्च ऋग्वेद में राष्ट्र की एकता एवम् अखण्डता के संरक्षण के लिए मनुष्य मात्र को प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।[4]

इतना ही नहीं अपितु राष्ट्र की रक्षा के लिए तथा स्वकल्याण के लिए परस्पर विरोध का परित्याग करके सूत्रबद्ध होना आवश्यक है। समाज एवं राष्ट्र के सर्वागीण विकास के लिए सामञ्जस्य अति आवश्यक है। इस प्रकार के संकेत वेद में स्थान-स्थान पर दिखलाई पड़ते हैं-

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा नः सुसहासति।।[5]

वेद का कथन है कि दृश्य जगत् के प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर की सत्ता है। इसलिए भोग्य-पदार्थों के प्रति अत्यधिक आसक्ति नहीं होनी चाहिए अपितु त्यागभाव से उनका उपभोग करना चाहिए, इस प्रकार के आचरण से ही वास्तविक सुख एवं शान्ति की प्राप्ति हो सकती हैं।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।[6]

वस्तुतः वैदिक धर्म मानव मात्र के कल्याण

हेतु है। आचार्य मनु ने अपने ग्रन्थ मनुस्मृति में **सर्वज्ञानमयो हि सः** कहकर वेद की श्रेष्ठता एवं सर्वज्ञानमयता का प्रतिपादन किया है। यदि हम वैदिक-उपदेशों को अपने आचरण का विषय बनाएँ तो समाज एक आदर्श समाज बन सकता है। तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली में प्रयुक्त 'सत्यं वद, धर्म चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः' दीक्षान्त भाषण के अवसर पर दिया जाने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जीवनोपयोगी उपदेश है, जिसकी आवश्यकता भौतिकता से ग्रस्त मानवमात्र के कल्याण के लिए परम आवश्यक है। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, अतिथि देवो भव इत्यादि वेद वचनों के माध्यम से माता-पिता, आचार्य, अतिथि आदि के देवत्व की उच्च भावना प्रतिपादित करके वैदिक संस्कृति ने विश्व की संस्कृतियों में उच्चतम स्थान बना लिया है। वैश्वीकरण के इस युग में भी हम एक दूसरे के हृदयों को पारस्परिक सहयोग के अभाव में जोड़ सकने मे समर्थ नहीं हो पा रहे हैं, जबकि इस वैश्वीकरण की कामना वैदिक ऋषियों ने **''यत्र विश्व भवत्येकनीडम्''**[7] अर्थात् जहाँ सारा संसार एक घोंसला बन जाए, कहकर बहुत पहले की कर दी थी। वैदिक मन्त्र मानव से सहयोग की भावना रखते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को सार्थकता प्रदान करते हैं। आज समस्त विश्व की एकमात्र समस्या यही है कि हमारा मन एवं दृष्टि इतने संकुचित हो गए हैं कि हम अधिकांश परिस्थितियों में अहंकार की भावना से युक्त हो गए हैं जबकि प्राचीन ऋषियों का कथन था।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[8]

ऋषियों की इस राष्ट्रीय-भावना को हम गाँधी जी के इन शब्दों में भी अनुभव कर सकते हैं जहाँ वे कहते हैं कि मैं किसी भी योजना को तभी सफल व सही समझूगां, जब उसके अपनाने से पंक्ति में खड़ा अन्तिम व्यक्ति भी लाभान्वित हो सकता है। वेद में सबके विचार, सबके हृदय सबके मन और सबका खाना-पीना समान होने की कामना की गई है, जिससे समाज सुखपूर्वक रहता हुआ अपना जीवन व्यतीत कर सके -

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।।[9]

वैदिक ऋषि की दृष्टि इतनी उदार है कि वह सभी वस्तुओं पर सभी का समान अधिकार समझती है। अतः आरक्षण की आवश्यकता न समझकर सभी के लिए एक ही पानीयशाला एवं भोजनशाला की कामना करती हुई दिखाई देती है।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।[10]

वेद की शिक्षाएँ सार्वभौम है। वेद में ऋषियों ने मानव के कल्याण के लिए कामना की है कि हम अविनाशी एवं कल्याणप्रद मार्ग पर चलें, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा चिरकाल से बिना

किसी का आश्रय लिए राक्षसादि दुष्टों से रहित पथ का अनुसरण कर अभिमत मार्ग पर चल रहे हैं, उसी प्रकार हम भी परस्पर स्नेह के साथ शास्त्रोपदिष्ट अभिभूत मार्ग पर चले। **'स्वस्ति पन्थामनुचरेम'**"[११] शतपथ ब्राह्मण में भक्त की ईश्वर से प्रार्थना है कि- हे प्रभु! मुझे बुराई से अच्छाई की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो- **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।**[१२]

एक अन्य स्थल पर प्रार्थना की गई है कि मेरा मन उत्तम संकल्प वाला हो-

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।[१३]

वर्तमान समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के मध्य गुरुजनों के प्रति बढ़ती अनादर की भावना के निवारण के लिए वैदिक मूल्यों की अत्यन्त आवश्यकता है,जहाँ पर कहा गया है कि ज्ञान प्राप्ति हेतु श्रद्धा का होना परम आवश्यक है। अनादरभाव से युक्त शिष्य को दी हुई शिक्षा दोष को ही उत्पन्न करने वाली होती है। ऋग्वेद में वर्णित **प्रियं श्रद्धे ददतः श्रद्धया विन्दते वसु, श्रद्धे श्रद्धापयेह नः**[१४] आदि कथन श्रद्धा के महत्त्व को दर्शाते है। गीता में भी कहा गया है,- **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्**[१५] किन्तु वर्तमान समय मे व्यक्ति में सत्य, अहिंसा, त्याग, तपस्या, दान,मैत्री, सहयोग, परोपकार, समानता आदि गुणों का क्षरण होता जा रहा है। इन मानवीय गुणों के संरक्षण हेतु वेद का अध्ययन अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है। सत्य समाज का आधार है। **अथर्ववेद में सत्य को धर्म कहा गया है।**[१६] उपनिषदों में प्राप्त **सत्यमेव जयते नानृतम्**[१७] आदि कथन सत्यनिष्ठा पर बल देते हैं। **ऋग्वेद में विश्व का नियन्त्रक एवं संचालक सत्य को माना गया है।**[१८] मन, वचन और कर्म से सभी प्राणियों के साथ द्रोह का अभाव अहिंसा है। **ऋग्वेद में इन्द्रदेव से कामना की गई है कि हम अहिंसक होकर जीवन में पुरूषार्थ द्वारा लक्ष्य प्राप्ति करें।**[१९] **हम हिंसारहित धन**[२०] एवं **हिंसारहित बुद्धि**[२१] प्राप्त करें। व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा का भाव दृढ़ होने पर ही मानव परिवार, समाज एवं राष्ट्र में अहिंसा का भाव स्थापित करने में समर्थ हो कसता है। संयमी और दयालु व्यक्ति ही अहिंसा के पात्र हैं। मैत्री की भावना व्यक्ति में उदारता उत्पन्न करती है। वेद में सभी प्राणियों को मित्रवत् देखने की कामना की गई है। **ऋग्वेद में कहा गया है कि जो मित्र की सहायता नहीं करता है, वह मित्र नहीं है जो उचित समय पर मित्र की रक्षा एवं सहायता नहीं करता, वह व्यक्ति परित्याग के योग्य है।**[२२] अथर्ववेद में अचेतन में भी मैत्री भावना की कामना करते हुए कहा गया है- **सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तुं।**[२३] अर्थात् सभी दिशाएँ मेरी मित्र हो। **यजुर्वेद में कहा गया है कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं**

सभी प्राणियों को मित्रवत् देखूं।

अत: आज समाज में तीव्रता से बढ़ रही ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, वैमनस्य इत्यादि की भावना को तभी समाप्त किया जा सकता है यदि हम प्राणी मात्र के प्रति दया एवं करुणा के भाव अपने हृदय में रखेंगे। दया को धर्म का मूल कहा जाता है। उपनिषदों में प्रजापति द्वारा उपदेश दिया गया है, कि दया करो दयध्वम्।

अत: निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि- वेद ज्ञान के अनुपम भण्डार है। आज पाश्चात्य संस्कृति अति बलवती हो रही है। आज जनसामान्य भौतिक रूप से वैश्विक स्तर पर प्रगति कर रहा है, परन्तु मानवीय मूल्य कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं। आज तो स्वार्थपूर्ति हेतु मिथ्या भाषण, छल-कपट, ईर्ष्या, द्वेष एवं दूसरे के अधिकारों का हनन करना ही व्यक्ति की प्रवृत्ति बनती जा रही है। ऐसे स्थिति में वेद का अध्ययन एवं शिक्षाएँ मानवता के संरक्षण एवं संवर्धन में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है। वेद ज्ञान के मानसरोवर हैं, जहाँ से ज्ञान की विमलधाराएँ विभिन्न मार्गों से बहती हुई भारत को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को उर्वर बनाने में सक्षम है।

---

१. मनुस्मृति, २.६
२. ऋग्वेद, १०.५३.६
३. वही, १०.१९१.२
४. वही, १०.१९१.४
५. यजुर्वेद ४०.१
६. मनुस्मृति, २.७
७. अथर्ववेद, २.२.१
८. पंचतन्त्र, ५.३७
९. ऋग्वेद, १०.१९१.४
१०. अथर्ववेद, ३.३०.६
११. ऋग्वेद, ५.१५.५१
१२. शतपथब्रह्मण, १४.१.१.३०
१३. यजुर्वेद, ३४.१
१४. ऋग्वेद, १०.१५१.१-५
१५. गीता, ४.३९
१६. अथर्ववेद, ५.१.२
१७. मुण्डकोपनिषद, ३.१.६
१८. ऋग्वेद, १०.३७.२
१९. वही, ७.२०.८
२०. वही, ६.२२.१०
२१. वही, ७.६७.५
२२. वही, १०.११७.४
२३. अथर्ववेद, १९.१५.६
२४. यजुर्वेद, ३९.१८
२५. बृहदारण्यकोपनषद्, ५-२.१-३

- एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत), राजकीय महाविद्यलय,
हांसी (हिसार)। मो. 9466246157

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

संत कबीरदास की भक्ति भावना

- संजीव कुमार

कबीरदास, काव्य, निर्गुण भक्ति, प्रचार-

हम जानते हैं कि कबीर दास भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है तथा वह निर्गुण की उपासना का संदेश देते हैं। उनकी राम भावना ब्रह्म भावना से सर्वथा मिलती है। कबीर पहले भक्त हैं फिर कवि। उन्होंने जात-पात, चमक-दमक, दिखावा, पहनावा, अंधविश्वास, हिंसा, माया, छुआ-छूत आदि पर विद्रोह भावना प्रकट की है। इन सब से दूर होकर भक्ति की भावना में लीन होने के लिए कबीरदास जी अपने काव्य के माध्यम से संदेश देते हैं। कबीर की भक्ति भावना का अध्ययन हम निम्नलिखित बिंदुओ के माध्यम से कर सकते हैं।

कबीर की निर्गुण उपासना - उन्होंने राम को निर्गुण रूप में स्वीकार किया है अतः वह निर्गुण राम की उपासना का संदेश देते हुए कहते हैं-

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई,
अविगत की गति लखी न जाई।[१]

उनके अनुसार राम फूलों की सुगंध से भी पतला अजन्मा और निर्विकार है वह विश्व के कण-कण में स्थित हैं। अतः उसे कहीं बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा है कि मृग की नाभि में कस्तूरी छिपी रहती है और मृग उस सुगंध का स्रोत बाहर ही ढूंढता फिरता है जबकि वह उसके भीतर ही विद्यमान होती है। कबीर कहते हैं-

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढत वन माहिं।
ज्यों घट-घट राम है, दुनिया देखे नाहिं।[२]

ईश्वर की महत्ता बताते हुए कबीर कहते हैं कि ईश्वर हर जगह विद्यमान हैं, वे कहते है कि ईश्वर कण-कण में समाया हैं हर इंसान के शरीर में, हर मन में, हर आंख में ईश्वर का निवास है। इसलिए हमें उसे ढूंढने की भी आवश्यकता नहीं है अपितु उसे एकाग्र मन से उनका स्मरण करने की आवश्यकता है-

कबीर खोजी राम का, गया जु सिंहल दीप।
राम तौ घट भीतर रमि रह्या, जो आवै परतीत।।[३]

राम नाम की महिमा- कबीर ने अनेक बार विभिन्न नामों से राम नाम को पूरी गंभीरता से लिया है। उन्होंने अपने आराध्य के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया। जिसमें राम, साईं, हरि, रहीम, खुदा, अल्लाह आदि प्रमुख हैं। यह सर्वविदित तथ्य है कि कवि निर्गुण राम के उपासक हैं। वह बार-बार राम नाम स्मरण की प्रेरणा देते हुए कहते हैं-

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, तब सौवैगा दिन राति।।[४]

हरि का सिमरन जो कर, सो सुखिया संसारी।
इत उत कतहु न डोलई, जस राखै सिरजहारी।।[5]

कबीर की दास्य भाव की भक्ति- कबीर भले ही निर्गुण मार्गी भक्त कवि कहे जाते हैं किन्तु उनमें दास्य भाव की भक्ति दिखाई देती है। तुलसी की भक्ति जिस प्रकार दास्य भाव की है उसी प्रकार कबीर की भक्ति भावना में भी दास्य भाव दिखाई पड़ता है। वह प्रभु को स्वामी और स्वयं को दास, सेवक या गुलाम कहते हैं-

कबीर सोई कुल भलो, जा कुल हरि को दासु।
जिह कुल दासु न ऊपजे, सो कुल ढाकु पलासु।।[6]

माधुर्य भाव की भक्ति - माधुर्य भाव की भक्ति को माधुर्य भक्ति या प्रेम लक्षणा भक्ति कहा जाता है। भक्त स्वयं को जीवात्मा एवं भगवान् को परमात्मा मानकर दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति जहां करता है वहां मधुरा भक्ति मानी जाती है। माधुर्य भाव की भक्ति कबीर दास के इस दोहे में स्पष्ट देखने को मिलती है। जैसे-

आंखड़ियां झांई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियां छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।।[7]

आत्मा का परमात्मा के प्रति विरह भाव कबीर ने बड़े मनोयोग से व्यक्त किया है। प्रियतम परमात्मा की बाट जोहते-जोहते भक्त की आंखों में झांई पड़ गई, राम को पुकारते हुए जीभ में छाले पड़ गये थे।

कबीर की वैराग्य भावना- कबीर के अनुसार वैराग्य से तात्पर्य संसार को छोड़कर जंगल में निवास करना नहीं अपितु संसार में रहते हुए भी मन में संतोष-वृत्ति लाना, विषय भोगों के प्रति अनासक्त होना, आशा तृष्णा से मुक्त होना वैराग्य है। कवि संसार के रिश्तों नातों को क्षणभंगुर मानते हैं। इन सभी सम्बन्धों को स्वार्थमय मानते हुए वे भक्तों में वैराग्य भावना जगाने का प्रयास करते हुए कहते हैं-

बैरागी बरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहै चूकाँ रीता पड़ै, ताकूं वार न पार।।[8]
तरवर रूपी रामु है, फल रूपी बैराग।
छाया रूपी साधु है जिन तजिया बादु बिबाद।।[9]

साधु को वैरागी और संसारी को माया से विरक्त होना चाहिए परञ्च गृहस्थी को उदार चित्त होना चाहिए अन्यथा दोनों का पतन निश्चित है।

ईश्वर में विश्वास- कबीर को ईश्वर की महत्ता का पता है इसलिए वे पूरी श्रद्धा और विश्वास से अपने ईश्वर की आराधना करते हैं। उनको विश्वास है कि परमात्मा पूर्ण समर्थ है। वह राई को पर्वत एवं पर्वत को राई करने की सामर्थ्य रखता है। उसी ओर संकेत करते कहते हैं-

कहै कबीर हरि गुण गाँऊ,
हिन्दू तुरक दोऊ समझाँऊ।।[10]

कबीर के राम सर्वव्यापी हैं। घट-घट में समए हुए हैं। इसीलिए वे कहते हैं-

अव्वल अल्लह नूर उपाया, कुदरत के सब बंदे।
एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले को मंदे।।[11]

आचरण की शुद्धता - कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंग का त्याग करने एवं सत्संग करने पर बल दिया है। कबीर का मानना है कि जब तक मन में काम, क्रोध,मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार भरे हैं तब तक हृदय में

भगवान् की भक्ति नहीं आ सकती। भक्ति-मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को अहंकार एवं कपट का भी परित्याग करना पड़ता है। जैसे-

केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूड़े सौ बार।

मन कौ न काहे मूड़िए, जामै बिषै विकार।।[१२]

ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।

औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय।।[१३]

अपने मन में अहंकार को त्याग कर ऐसे कोमल और मीठे शब्द बोलने चाहिए जिससे सुनने वाले के मन को अच्छा लगे। ऐसी भाषा दूसरों को तो आनन्द देती ही है साथ ही स्वयं को भी।

सामाजिक दिखावे का विरोध- तत्कालीन समाज में व्याप्त दिखावे की भावना का प्रबल विरोध किया गया। जात-पात तथा ऊँच-नीच इत्यादि भावना का भी कड़ा विरोध करते हुए लिखते हैं-

कहै कबीर मधिम नहीं कोई,

सौ मधिम जा मुखि राम न होई।[१४]

नाम स्मरण- कबीर दास के अनुसार केवल नाम लेने मात्र से ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है इसलिए वे कहते हैं कि हमें सच्चे मन से ईश्वर को स्मरण करते रहना चाहिए। जब हम एकाग्रचित होकर ईश्वर के नाम का जप करते हैं, तभी वह फलदायी होता है। वे ऐसे नाम स्मरण का विरोध करते हैं जिसमें मन दसों दिशाओं में घूमता रहता है। कबीर कहते हैं राम नाम रूपी धन को संचित करना चाहिए। इसे न तो आग से जलाया जा सकता है तथा न ही इसे कोई चोर चुरा सकता है।

अग्नि न दहे पवन नहीं गमनै, तस्कर नेरि न आवै।

राम नाम धन करि संचौनी, सो धन कतही न जावै।[१५]

कहै कबीर राम नाम न छोड़ो,

सहज होइ सु होइ रे।।[१६]

विरह भावना- कबीर दास ने अपने काव्य में आत्मा-परमात्मा में विरह का सुन्दर वर्णन किया है। कबीर अपने मन की बेचैनी के विषय में लिखते हैं-

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।

जिव तरसै तुझ मिलन कूं, मनि नाहीं विश्राम।।[१७]

कबीर का प्रपत्ति भाव - प्रपति का अर्थ है पूर्ण समर्पण, शरणागति एवं आत्मनिवेदन। कबीर भगवान् को सर्वशक्तिमान मानकर, उसकी शरण में जाकर अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हुए कहते हैं-

दीन दयाल कृपाल दमोदर,

भक्ति बछल भैहारी।

कहत कबीर भीर जनि राखहु,

हरि सेवा करौं तुम्हारी।।[१८]

अलौकिक प्रणयानूभूति- कबीर के काव्य में परमात्मा के प्रति अलौकिक प्रणयानूभूति की अभिव्यक्ति की गई है। कबीर वैसे तो खंडन-मंडन की राह पर चलते रहे हैं और आडम्बर वादियों को खरी-खोटी सुनाते रहे हैं किन्तु अपनी रहस्यवादी रचनाओं में से वे अत्यंत मृदुल और कोमल दिखाई देते हैं। जैसे-

हमारा झगरा रहा न कोऊ।

पंडित मुल्ला छाडै दोऊ।।

पंडित मुल्ला जो लिखि दिया।

छाड़ि चले हम कछू न लिया।।[२०]

ईश्वर की प्राप्ति के लिए मार्ग- कबीर दास ईश्वर प्राप्ति का सच्चा मार्ग पहचाने तथा पहुँचे हुए सन्त थे। उनका मानना है कि ईश्वर दिखावे से नहीं अपितु उसको प्राप्त करने के लिए उनमें पूर्ण समर्पण की भावना का होना आवश्यक है। इसीलिए वे कहते हैं कि लोग ईश्वर की प्राप्ति के लिए बाह्य आडम्बर करते हैं, पूर्ण समर्पण नहीं करते। उनके अनुसार शरीर, मन तथा माया सब नष्ट हो जाता है परंतु मन में उठने वाली आशा और तृष्णा कभी नष्ट नहीं होती। इसलिए संसार के मोह, तृष्णा आदि में नहीं फंसना चाहिए। जैसे-

माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर।[२०]
लम्बा मारग दूर घर, विकट पंथ बहु मार
कहौ संतों क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि दीदार।।[२१]

भक्त रूपी कबीर - कबीर भक्त के रूप में निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में बिना किसी बाहरी आडम्बर के भक्त ईश्वर में अपने को समाहित कर देता है। निर्गुण ब्रह्म के उपासक को किसी बाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उनको तो कण-कण में ईश्वर की उपस्थिति दिखाई देती है। भक्त के रूप में कबीर कहते हैं-

हरि का नाम न जपसि गंवारा।
क्या सोचहिं बारंबारा।।[२२]
कबीर सोई मुख धन्नि है, जा मुख कहिये राम।
देही किसकी बापूरी, पवित्र होइगो ग्राम।।[२३]

अहंकार का परित्याग- अहंकारी व्यक्ति के विषय में उनकी भावना थी कि-

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणीं ऊंच न होई।
सोवन कलस सुरे भर्या, साधू निधैं सोइ।।[२४]

कबीर का तन्मयता - कबीर अपने प्रियतम के प्रति पूरी तरह समर्पित दिखाई देते हैं, वे उसके साथ ही जुड़ना चाहते हैं। उनका यह भाव भक्ति के चरम उत्कर्ष को प्रकट करता है, वे कहते हैं-

कबीर हमरा कोई नहीं, हम किसहू के नाहिं।
जिन यहु रचन रचाइया, तितहीं माहिं समाहिं।।[२५]

कबीर की उपासना में अनन्यता और अटल-भक्ति का स्वरूप प्रकट होता है। उनके ईश्वर का कोई रूप नहीं इसलिए उन्होंने भगवान् की तुलना कस्तूरी से की है कस्तूरी की गंध का अनुभव किया जा सकता है पर उसका कोई रूप नहीं होता।

वात्सल्य भावना- कबीर के काव्य में यत्र तत्र वात्सल्य का मनभावन रूप सामने आता है कवि स्वयं को बालक और ईश्वर को जननी के रूप में मान्यता देते हुए कहते हैं-

हरि जननी मैं बालक तोरा
काहे ना अवगुन बकसहु मेरा।।[२६]

कबीर का कांता भाव- कबीर ने ईश्वर को कांता भाव से स्मरण करते हुए स्वयं को उनकी भार्या के रूप में प्रस्तुत किया है। अपने पति ईश्वर को याद करते हुए कवि की आत्मा आवाज देती है-

दुलहनी गावहु मंगलचार
हम घरि आए हो राजा राम भरतार।।[२७]

अद्‌वैतवाद- ब्रह्मा, जीव, जगत माया आदि तत्त्वों का निरूपण कबीर दास ने भारतीय अद्‌वैतवाद के अनुसार किया है। उनके अनुसार जगत् में जो कुछ भी है वह ब्रह्म ही है। अंत में सब ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है। वे कहते है-

जब मैं था तब हरि नहीं,
अब हरि है मैं नांहि।
सब अंधियारा मिट गया
जब दीपक देख्या मांहि।।[२८]

पाणी ही तो हिम भया,
हिम है गया बिलादू।
जो कुछ था सोई भया,
अब कुछ कहा ना जाइ।।[२९]

संसार के मिथ्यात्व तथा माया के भ्रम का आख्यान भी कबीर ने अद्‌वैतवाद विचारधारा के अनुरूप किया है।

कबीर की भक्ति भावना में प्रेम को आकर्षक और प्रभावी महत्त्व दिया गया है। उनका मानना है कि मानव प्रेम में भी ईश्वर की कृपा होती है। कण-कण में समाया राम ही मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रेरणाधार है। कबीर ईश्वर के सच्चे भक्त थे। कबीर की भक्ति सहज है। वे ऐसे मंदिर के पुजारी हैं जिसकी फर्श हरी-हरी घास तथा जिसकी दीवारें दसों दिशाएं हैं। जिसकी छत नीले आसमान की छतरी है। यह साधना स्थल सभी मनुष्यों के लिए खुला है। कबीर की भक्ति में एकाग्र मन, सतत साधना, मानसिक पूजा अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति को विशेष महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना बहुत ही अद्‌भुत है।

---

१. डॉ. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ, १४७, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।

२.व ३. वही, पृष्ठ १२९	४. वही, पृ. ६३१	५. वही, पृ. २६७
६. वही, पृ. २६६	७. वही, पृ. ६६	८. वही, पृ. १०८
९. वही, पृ. २६०	१०. वही, पृ. १९६	११. वही, पृ. २७२
१२. वही, पृ. ९९	१३. वही, पृ. १०९	१४. वही, पृ. १४५
१५. वही, पृ. २६९	१६. वही, पृ. २७२	१७. वही, पृ. ६५
१८. वही, पृ. २८१	१९. वही, पृ. २७५	२०. वही, पृ. ८७
२१. वही, पृ. ६४	२२. वही, पृ. २८२	२३. वही, पृ. २६७
२४. वही, पृ. १००	२५. वही, पृ. २६८	२६. वही, पृ. १६०
२७. वही, पृ. १३५	२८. वही, पृ. ७२	२९. वही, पृ. ७०

- 315, सेक्टर - 12-ए, गुरुग्राम - 122 001।
मो. 9312274100

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. ९
दिसम्बर ,२०२३

हिन्दी की सांस्कृतिक विरासत

- रघुबीर सिंह बोकन

संस्कृति और दार्शनिकता किसी भी साहित्य की समृद्धि व जीवन्तता के सूचक तत्त्व हैं। प्रत्येक भाषा का साहित्य अपनी सनातन संस्कृति से सजीवता और दर्शन से वैचारिक शक्ति व सबलता प्राप्त करता है। संस्कृतिशून्य साहित्य लोकमानस से असम्पृक्त होने के कारण अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाता और दर्शनविहीन साहित्य भी स्थूल सामयिक परिस्थितियों का विवरण मात्र होने के कारण निरुद्देश्य व निष्प्रयोजन होकर रह जाता है। यद्यपि दर्शन की स्वतन्त्र बौद्धिक अस्मिता है, तथापि उसे निकाय-विशिष्ट अर्थ से अलग करके देखा जाए तो वह भी संस्कृति का ही एक आवश्यक अवयव सिद्ध होता है। संस्कृति किसी निश्चित काल में, किसी निश्चित भूभाग पर शताब्दियों के दीर्घकाल तक निरन्तर निवास करने वाले मानव समाज की धर्म, दर्शन, कला, नैतिकता, रीति-परम्परा व आचार-संहिता से सम्बन्धित उदात्त अवधारणाओं की वह सुखद राशि है जो व्यक्ति के आन्तरिक जीवन को सुन्दर बनाती है।

प्रत्येक साहित्य अपनी सांस्कृतिक विरासत से प्राण वायु प्राप्त करता है। विश्व साहित्य में केवल उसी भाषा का साहित्य कालजयी स्थिति प्राप्त करता है जो सुदृढ़ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर अवस्थित हो। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा का साहित्य संस्कृति सम्पन्न होने के कारण विश्व साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में उसकी सुदीर्घ सांस्कृतिक विरासत समाहित है, जो उसे विशिष्ट गरिमा व महिमा प्रदान करती है। हिन्दी साहित्येतिहास के चारों काल खण्डों (आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल) के सहस्राधिक वर्षों में रचित साहित्य की सांस्कृतिक विरासत का विवेचन करना ही यहाँ प्रमुख प्रयोजन है।

यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सम्वत् १०५० से लेकर सम्वत् १०७५ तक हिन्दी साहित्येतिहास के आदिकाल की व्याप्ति मानी है, तथापि जॉर्ज अब्राहम गियर्सन, मिश्रबन्धुओं व ३६ भाषाएँ पढ़ने, लिखने व बोलने की असाधारण प्रतिभा रखने वाले महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने ७०० ई. से लेकर १३०० ई. तक के हिन्दी साहित्य को आदिकाल में स्थान दिया है। इस दृष्टि से जैन, सिद्ध और नाथपंथी साहित्य भी हिन्दी की परिधि में आ जाता है। जैन साहित्य को व्यापक रूप में हिन्दी ने सांस्कृतिक विरासत के रूप में ग्रहण किया है। जैन धर्म की शुचिता, सत्य, अहिंसा और अस्तेय की सात्विक प्रवृत्तियों को हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक विरासत के रूप में समाहित किया गया है। जैन धर्म के प्रमुख कवि स्वयंभू हैं जिन्होंने राम-कथा को नवीनता

प्रदान करते हुए **'पउम चरिउ'** नामक काव्यात्मक ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने अपने **'अष्टनेमिचरित'** ग्रन्थ में कृष्ण को महामानव के रूप में चित्रित किया है। हिन्दी में जो चरित काव्य (जैसे **सुदामा चरित, रामचरितमानस** आदि) परम्परा है, वह स्वयंभू के उक्त दो ग्रन्थों के फलस्वरूप ही है। इसी क्रम में हेमचन्द्र सूरि के **'हेमचन्द्र शब्दानुशासन'** व **'कुमारपाल चरित'** तथा शालिभद्र सूरि के **'भरतेश्वर बाहुबली राम'** रेवन्तगिरि **रास, पंच पांडव चरित रास, गौतम स्वामी रास** आदि अनेक रासात्मक जैन काव्यों ने हिन्दी की सांस्कृतिक विरासत को पुष्ट किया है। विश्वभारती विश्वविद्यालय, शान्ति-निकेतन के स्वर्गीय प्रोफेसर डॉ. रामसिंह तोमर ने अपने प्रकाशित शोध-प्रबन्ध **'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव'** और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के स्वर्गीय प्रोफसर डॉ. नामवर सिंह ने **'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग'** नामक अपने पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ में जैन साहित्य सम्बन्धी हिन्दी की सांस्कृतिक विरासत का सविस्तार प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है।

बौद्ध धर्म की कोख से उत्पन्न **सिद्ध साहित्य** हिन्दी की विशिष्ट विरासत है। ईसा की चौथी शताब्दी में बौद्ध धर्म **महायान** और **हीनयान** सम्प्रदायों में विभक्त हुआ और अनन्तर **महायान से मन्त्रयान, मन्त्रयान से तन्त्रयान** और **तन्त्रयान** से **वज्रयान** या **सहजयान** में परिवर्तित हुआ। यज्ञों और कर्मकाण्डों को छोड़, अहिंसा का प्रबल पोषण और अवतारवाद व देवी-देवताओं के प्रति अनास्थापूर्ण अस्वीकृति- इन सम्प्रदायों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं जो आगे चलकर हिन्दी के सन्त साहित्य में विशेष रूप से देखी जा सकती हैं। सिद्धों की संख्या ८४ मानी जाती है। राशियाँ १२ हैं और दिन ७ होते हैं। बारह को सात से गुणा करने पर ८४ संख्या बनती है। सिद्धों में **सरहपा** सर्वोच्च सिद्ध माने जाते हैं जिन्होंने अपने ग्रन्थ **'दोहाकोश'** में प्रचलित रूढ़िबद्ध धर्म का खण्डन करके सहज साधना का प्रचार किया। **कणहपा, शबरपा, तिलोपा, डोम्भिपा, लुईपा, शान्तिपा, कुक्कुरिपा, गुण्डरिपा, दारिकपा** आदि इस परम्परा के अन्य प्रमुख सिद्ध हैं। सिद्धों ने दोहों और चर्यापदों के रूप में अपनी रचनाएँ लिखीं। कबीर को दोहों की प्रेरणा यहीं से मिली। जिन पदों में सिद्ध अपने दिन भर के आचरण व अनुभूतियों का गायन करते थे, उन्हें **'चर्यापद'** की संज्ञा दी गई। चर्यापदों को पद भी कहा जाता है। अनुभूतिप्रवण होने के कारण चर्यापदों में प्रेम, विरह, मिलन, महासुख का वर्णन है। तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई ने पद-रचना की प्रेरणा सिद्धों के चर्यापदों से ही प्राप्त की। स्वर्गीय डॉ. धर्मवीर भारती ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डी. फिल् उपाधि हेतु सन् १९५४ में स्वीकृत अपने प्रकाशित शोध-प्रबन्ध **'सिद्ध साहित्य'** में सिद्धों की धार्मिक व सांस्कृतिक विशेषताओं का विस्तृत वर्णन करते हुए यह सिद्ध किया है कि सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य ने सिद्ध साहित्य से बहुत कुछ प्राप्त किया है।

धर्म के नाम पर सिद्धों में जब वामाचार फैल गया तो इसकी प्रतिक्रियास्वरूप **नाथ पंथ** का उदय हुआ। इसकी कालावधि सामान्यतः नवीं से तेरहवीं शती तक मानी जाती है। नाथ पंथ का प्रचार प्रमुख रूप से पंजाब और राजस्थान में हुआ, परन्तु अपनी लोक-स्वीकृति के कारण यह असम से लेकर तिब्बत तक फैल गया। शिव इस पंथ के अनुयायियों के आराध्य देव हैं। नाथपंथियों ने पतंजलि के हठयोग को ईश्वर-प्राप्ति के उच्च लक्ष्य हेतु ग्रहण किया। नाथों की संख्या नौ मानी जाती है और **गोरखनाथ** इस पंथ के प्रवर्तक व प्रमुख कवि हैं। इनके अतिरिक्त **मत्स्येन्द्रनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, गोपीचन्दनाथ** और **चर्पटीनाथ** भी इस परम्परा के प्रसिद्ध नाथ हैं। **गोरक्षशतक, गोरक्षगीता, नाड़ीज्ञान प्रदीपिका, सिष्या दर्शन, प्राण संकली, नरवै बोध** और **हठयोग** आदि गोरखनाथ की प्रमुख कृतियाँ हैं। Nirgun School of Hindi Poetry नामक शोध-प्रबन्ध लिखकर आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से सन् १९३३ में हिन्दी में सर्वप्रथम डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त करने वाले अनन्य विद्वान डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ के १४ ग्रन्थों को प्रामाणिक मानकर उनका संकलन-सम्पादन कर उन्हें नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से **'गोरखबानी'** नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाया था। उक्त पुस्तक की प्रस्तावना में उन्होंने सिद्ध किया है कि शिव-भक्त नाथों के कुण्डलिनी, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, नाद, अनहद, त्रिकुटी, ब्रह्मरन्ध्र आदि के प्रभाव ग्रहण कर कबीर प्रभृति सन्तों ने भी अपने पदों में इन यौगिक शब्दों का प्रयोग किया है। भक्तिकालीन साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध नारी-निन्दा भी नाथपंथियों के प्रभावस्वरूप ही है, क्योंकि नाथों ने नारी-संग का विरोध करते हुए कठोर ब्रह्मचर्य का समर्थन किया है। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने अपनी **'कबीर ग्रन्थावली'** नामक पुस्तक की विस्तृत आलोचनात्मक भूमिका में तथा **आचार्य परशुराम चतुर्वेदी** ने सन् १९५१ में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा'** में नाथ सम्प्रदाय व इसके साहित्य को परवर्ती हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक विरासत माना है। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के दिवंगत प्रोफेसर **डॉ. शिवशंकर शर्मा 'राकेश'** द्वारा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी व डॉ. हरवंशलाल शर्मा के संयुक्त निर्देशन में सन् १९५६ में लिखित **'हिन्दी के भक्तिकालीन साहित्य में योग भावना'** नामक प्रकाशित शोध-प्रबन्ध भी उक्त विषय पर व्यापक प्रकाश डालता है।

वैदिक संस्कृत साहित्य हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक सुदृढ़ सांस्कृतिक विरासत है। वेदों में विष्णु, इन्द्र, वरुण, अग्नि, मारुत, प्रजापति, रुद्र, सोम, सूर्य आदि देवताओं की स्तुतियाँ हैं। वस्तुतः वैदिक साहित्य हिन्दी साहित्य का उपजीव्य साहित्य है जिसके विभिन्न देवी-देवताओं एवं पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर हिन्दी में विपुल साहित्य-रचना की गई है। उपनिषदों में निहित वेदान्त दर्शन ने हिंदी साहित्य को दूर तक प्रभावित किया है। भक्तिकाल का हिन्दी साहित्य उपनिषदों के वेदान्त व उसके परवर्ती आनुषंगिक

दर्शनों से विशेष प्रेरित व प्रभावित है। वेदान्त व उसके आनुषंगिक दर्शनों में केरल के शंकराचार्य (७८८-८२०) के **अद्वैतवाद**, तमिलनाडु के रामानुजाचार्य (१०१७-११३७) के **श्री सम्प्रदाय** अथवा **विशिष्टाद्वैतवाद**, कर्नाटक के मध्वाचार्य (१२३८-१३१७) के **द्वैतवाद**, तैलंगाना के निम्बार्काचार्य (बारहवी शताब्दी) के **द्वैताद्वैतवाद**, आन्ध्रप्रदेश के वल्लभाचार्य (१४७९-१५३१) के **शुद्धाद्वैतवाद/वल्लभ सम्प्रदाय/पुष्टि सम्प्रदाय**, स्वामी हितहरिवंश (१५०२-१५५२) के **राधावल्लभ संप्रदाय**, महाप्रभु चैतन्य (१४८६-१५३४) के **चैतन्य सम्प्रदाय** तथा स्वामी हरिदास (१४८०-१५७३) द्वारा स्थापित **हरिदासी** या **सखी संप्रदाय** की गणना होती है। इन सभी सांस्कृतिक विचारधाराओं ने ईश्वर के सगुण-निर्गुण रूप की स्थापना करते हुए तत्सम्बन्धी भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। हिन्दी का समस्त भक्तिकालीन राम-कृष्ण काव्य इन सांस्कृतिक सम्प्रदायों से विशेष प्रभावित है और उक्त दोनों धाराओं के कवियों (तुलसीदास, नाभादास, अग्रदास, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान, कृष्णदेव पयहारि, सूरदास, नन्ददास, मीराबाई) ने इन सम्प्रदायों के सांस्कृतिक दाय का ग्रहण करते हुए विपुल साहित्य का सृजन किया है।

वैष्णव भक्ति साहित्य में **अद्वैतवाद, शुद्ध अद्वैतवाद** और **विशिष्ट अद्वैतवाद** के रूप में वेदान्त का प्रभाव स्पष्टतः मिथ्यात्व पर बल दिया तो वैष्णवों ने उपनिषदों की निवृत्ति का बदल दिया। संस्कृत में 'गुण' का अर्थ है डोरी। डोरी का काम है बाँधना। यह जगत् गुणमयी है। यहाँ सब एक-दूसरे से बँधे हैं। 'निर्गुण' होते ही सारे बन्धन समाप्त हो जाते हैं। वस्तुतः जहाँ निर्गुण सन्तों ने औपनिषदिक वेदान्त की निवृत्तिपरक व्याख्या की, वहाँ तुलसीदास-सूरदास-नन्ददास आदि भक्त कवियों ने उसकी प्रवृत्तिपरक व्याख्या की। बल्लभाचार्य के **शुद्ध अद्वैतवाद** पर आधारित **पुष्टि सम्प्रदाय** ने **अष्टछाप** के कृष्ण भक्त कवियों को विपुल सांस्कृतिक सम्पत्ति प्रदान की। वल्लभाचार्य के अनुसार जीव अपनी शक्ति की अभिवृद्धि या अपने सुषुप्त गुणों के जागरण के लिए ब्रह्म की अनुकम्पा पर निर्भर रहता है। इसी अनुकम्पा अथवा अनुग्रह को उन्होंने **'पुष्टि'** का नाम दिया है। भगवान् का अनुग्रह ही पुष्टि है और यह पुष्टि स्वयं को भगवान् के चरणों में समर्पित करने से प्राप्त होती है। इस मार्ग के अनुयायी आत्मसमर्पण के द्वारा अपने आराध्यदेव की अनुकम्पा या पुष्टि प्राप्त करना ही अपनी भक्ति का चरम लक्ष्य मानते हैं। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों का समस्त साहित्य पुष्टि सम्प्रदाय की सांस्कृतिक स्थापनाओं व मान्यताओं का संवाहक है। चैतन्य सम्प्रदाय के सांस्कृतिक सिद्धान्तों ने तो कृष्ण भक्ति को इतना भावपूर्ण और माधुर्यपूर्ण बना दिया कि इस मनोमुग्धकारी भक्ति-पद्धति ने हिन्दुओं के धर्मान्तरण को ही नहीं रोक दिया, वरन् अनेक मुस्लिमों को हिन्दू धर्म अपनाने को उत्प्रेरित किया। महाप्रभु चैतन्य के मोहक उपदेशों से प्रभावित होकर दो मुस्लिम भाई उनके अनुयायी हो गये। धर्म-परिवर्तन के बाद **शकूर मलिक** का नाम **सनातन गोस्वामी** और **दबीर**

खान का नाम रूप गोस्वामी रखा गया। एक अन्य मुस्लिम कृष्ण भक्त का नाम हरिदास रखा गया। डॉ. मलिक मोहम्मद ने अपनी पुस्तक **'वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन'** में इन तथ्यों का सविस्तार वर्णन किया है।

सन् १९४९ में **'रीतिकालीन कवि देव और उनकी कविता'** नामक शोध-प्रबन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. के पश्चात् सीधे ही डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त करने वाले हिन्दी के उद्भट आलोचक स्वर्गीय डॉ. नगेन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ में तथा आगे चलकर **'रीति काव्य की भूमिका'** नामक ग्रन्थ में भी रीतिकालीन केशवदास, चिन्तामणि, बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर आदि कवियों के काव्य में पुरातन भारतीय सांस्कृतिक व दार्शनिक विरासत का दिग्दर्शन कराया है। यद्यपि हिन्दी के रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों पर वात्स्यायन के **'कामसूत्र'** तथा मध्यकाल में रचित **'रति रहस्य'**, **'अनंग रंग'** तथा **'सायक'** आदि कामशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रभाव है, तथापि उसके नीति, भक्ति व वैराग्य विषयक साहित्य पर **गोवर्धनाचार्य** की **'आर्यसप्तशती'** तथा भर्तृहरि के **'वैराग्य शतक'** व **'नीति शतक'** का प्रभाव है।

लौकिक संस्कृत में लगभग ४००-५०० ईसवी पूर्व रचित **रामायण**, **महाभारत** और **श्रीमद्भागवद्गीता** हिन्दी के उपजीव्य सांस्कृतिक ग्रन्थ हैं जिनके प्रसंगों व पात्रों के आधार पर हिन्दी साहित्य में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है। अभी पिछले ही वर्ष २०२२ में मराठी कथाकार **शुभांगी भड़भड़े** का महाभारत-कथा पर आधारित उपन्यास **'पूर्ण विराम'** आया है जिसे उन्होंने स्वयं हिन्दी में अनूदित कर **'अथ श्रीमहाभारत कथा'** नाम से प्रकाशित करवाया है। हमारे हिन्दी साहित्य में **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** पदावली का भी बहुत प्रचार है। यह पदावली बंगला से ली गई या अंग्रेजी से, यह कहना कठिन है। बंगला में रवीन्द्र के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर को इसे प्रचलित करने का श्रेय है, पर उन्होंने यह शब्दावली कहाँ से ग्रहण की, इस पर वहाँ भी निश्चित रूप से किसी ने कुछ नहीं कहा। अंग्रेजी में सन् १८५४ में प्रकाशित विक्टर कजिन की The true, the good and the beautiful नामक एक पुस्तक है। सम्भव है यह 'शब्दत्रय' इसी से लिया गया हो। लेकिन ऐसा नहीं है। हमने यह 'शब्दत्रय' कहीं से नहीं लिया। यह तो हमारे औपनिषदिक साहित्य का ऋत, श्रेयस व सौन्दर्य सम्बन्धी मूल सांस्कृतिक उद्घोष है जिसने हिन्दी ही नहीं, बल्कि हमारे सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को प्रभावित किया है। आधुनिक काल के हिन्दी साहित्यकारों ने भी इस औपनिषदिक उद्घोष व उपयुर्क्त ग्रन्थों में उपलब्ध सांस्कृतिक-धार्मिक विरासत का प्रभूत प्रयोग किया है। इन ग्रन्थों में निहित 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना मानव मात्र के कल्याण की कामना करती है। वस्तुत: सनातन संस्कृति में धर्म एक व्यापक अवधारणा है जो मानव मात्र के लिए है- किसी सम्प्रदाय या जाति विशेष के लिए नहीं। इसलिए सनातन संस्कृति में हर यज्ञ- अनुष्ठान के बाद **'धर्म की जय हो, अधर्म का विनाश हो'**, **प्राणियों में सद्भाव हो, विश्व का कल्याण हो'**- जैसी

मंगल कामनाएँ की जाती हैं। यहाँ किसी मत या सम्प्रदाय की जय-जयकार नहीं की जाती। गीता में भगवान् कृष्ण भी यही कहते हैं कि जब-जब धर्म का विनाश होता है, अधर्म बढ़ता है- तब-तब मैं अवतरित होता हूँ। उन्होंने यह नहीं कहा कि जब-जब हिन्दू धर्म का विनाश होता है, तब-तब मैं धर्म-रक्षा के लिए अवितरित होता हूँ। लोककन्याण से परिपूर्ण यही उदार वैश्विक भावना आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य में भी उपलब्ध होती है। जयशंकर प्रसाद की '**कामायनी**' इसका प्रबल प्रमाण है। अयोध्यासिंह उपाध्याय के महाकाव्य '**प्रियप्रवास**' और '**वैदेही वनवास**', मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य '**साकेत**' और खण्डकाव्य '**जयद्रथ वध**', सुमित्रानन्दन पन्त के महाकाव्य '**लोकायतन**' तथा खण्डकाव्य '**सत्यकाम**', नरेन्द्र शर्मा के खण्ड काव्य '**द्रौपदी**', रामधारी सिंह दिनकर के खण्ड काव्य '**कुरुक्षेत्र**' और '**उर्वशी**', नागार्जुन के खण्डकाव्य '**भस्मांकुर**', धर्मवीर भारती के नाट्यकाव्य '**अंधायुग**' तथा जगदीश गुप्त के खण्डकाव्य '**शम्बूक**', की कथानक रामायण, महाभारत तथा भगवद्गीता के सांस्कृतिक सिद्धान्तों की भावभूमि पर आधारित है। प्रेमचन्द के '**रंगभूमि**' व '**सेवा सदन**' तथा जैनेन्द्र के '**परख**' व '**त्याग पत्र**' उपन्यासों में गांधीवादी मूल्य समाहित हैं। हरिवंशराय बच्चन कृत '**खादी के फूल**' काव्य-संग्रह में गांधीवादी सांस्कृतिक मूल्यों को आधार रूप में ग्रहण किया गया है। सोहनलाल द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र के काव्यों में भी गांधीवादी सांस्कृतिक विचारधारा का व्यापक रूप देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य की एक सुदीर्घ सांस्कृतिक विरासत है जो वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान युग में गांधीवादी सांस्कृतिक मूल्यों तक परिव्याप्त है। हिन्दी की यह सांस्कृतिक विरासत उसके विगत चारों कालखण्डों के साहित्य में सर्वत्र प्रतिबिम्बित दिखाई देती है।

- 315, सेक्टर - 12-ए, गुरुग्राम - 122 001।
मो. 9312274100

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

लहरीदशकम् और सामाजिक सन्दर्भ

- डॉ. सञ्जय कुमार

लह-री लेन इन्द्रेण इव ह्रियते ऊर्ध्वगमनाय, (ल+इ+इन पक्षे डी.ष) लहर, समुद्र, तरंग, बड़ी लहर आदि। वाचस्पत्यम् में लहरी शब्द तरंग, लहर आदि अर्थ दिया गया है। आधुनिक काव्यशास्त्र के लक्षणकारों में आचार्य अभिराजराजेन्द्रमिश्र प्रणीत 'अभिराजय-शोभूषणम्' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसमें लहरी काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

परस्परं समासक्ता लहर्यो जलधौ यथा।
भङ्गिव्रजं जनयन्त्यो यान्त्यद्वैत स्वरूपताम्।।
भक्ति श्रृङ्गार सन्दर्भाः काव्येऽन्येऽपि तथा यदा।
भिन्ना सन्तोऽपि पुष्णान्ति मूलभावं पुनः पुनः।।
लहरी सन्निभा भाषाविच्छितिं जनयन्ति च।
नयनाऽसेचनं भूरि वितन्वन्ति निरन्तरम्।।
तदा तल्लहरी काव्यं कोविदैर्विनिगद्यते।
अभिराजमतञ्चैतन्निश्चितं बुधतोषणम्।।[1]

जैसे सागर में लहरियाँ एक दूसरे के साथ जुड़ी रहती हैं तथा नाना प्रकार की भंगियो को उत्पन्न करती परस्पर अभिन्न प्रतीत होती हैं, उसी प्रकार काव्य में जब भक्ति एवं श्रृंगार के सन्दर्भ अथवा अन्यान्य प्रवृत्तियाँ भी परस्पर भिन्न होती हुई भी मूलभाव को पुनः पुन्येन सम्पुष्ट करती हैं। लहरियों के समान तथा भाषा-सौन्दर्य की सृष्टि करती हैं एवं क्षण-प्रतिक्षण नयनासेचन को बिखेरती रहती हैं, तो उसी को विद्वज्जन लहरी काव्य कहते हैं। विद्वानों को परिपुष्ट करने वाला यही मत अभिराज का भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लहरी काव्य भाव की अतल गहराइयों में पहुँचकर रंजन के साथ सौन्दर्य का विधान करती है। लहरी-काव्य परम्परा में सर्वप्रथम सौन्दर्यलहरी, आनन्दलहरी का नाम आता है, जिसके प्रणेता शंकराचार्य हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास ने भी कुछ लहरी काव्यों का प्रणयन किया है, जिसका उल्लेख मिलता है। उसी लहरी काव्य परम्परा में पं. राज जगन्नाथ आते हैं जिनके लहरी काव्य इस प्रकार हैं-

अमृतलहरी- इसमें यमुना की स्तुति की गई है।

गंगालहरी- गंगा की स्तुति में लिखी गई है, इसे पीयूषलहरी तथा गीतामृत लहरी भी कहते हैं।

करुणालहरी- इसमें विष्णु की स्तुति की गयी है। अत एव इसे विष्णु लहरी नाम से भी जाना जाता है।

लक्ष्मीलहरी- इसमें लक्ष्मी की स्तुति की गयी है।

सुधालहरी- इस लहरी काव्य में सूर्य की स्तुति है।

---

१. अभिराजयशोभूषणम्, निर्मितित्त्वोन्मेषः, पृ. २२४-२२५

शांतिपुर के निवासी रामनाथ तर्करत्न (१८९३) के द्वारा भी दो लहरी काव्य लिखे गये हैं-

विलापलहरी- विलाप से सम्बन्धित वर्णन किया गया है।

आर्यालहरी- आर्यालहरी में विविध नायकों की श्रृंगारपूर्ण चेष्टाओं का वर्णन है। जिसमें ९०० आर्या छन्द हैं।

पं. क्षमा देवी के द्वारा मीरालहरी लिखी गयी है। जिसको शार्दूलविक्रीडित के १३५ छन्दों मे निबद्ध किया है। जिसमें नारी हृदय का समर्पण, आस्था, सामाजिक विसंगतियों के प्रति विरोध के भाव की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें पण्डिता क्षमाराव ने तन्मयीभाव से मीरा के अन्तरंग संसार का चित्रण किया है। जिससे मीरा से उनकी एकाकार की स्थिति प्रकट होती है। इसीलिए यह मीरा चरित भी कहा जा सकता है तथा मीरा की साधना गाथा भी। जब कवि अपने कविता जगत् में पहुँचता है तब वह कुछ और ही हो जाता है। वह संसार को एक प्रजापति की तरह ही देखता है।

बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते के द्वारा साहित्यलहरी १९७७ ई. में लिखी गयी है। सानुप्रास पदावली और छन्द के निर्वाह के द्वारा खिस्ते जी ने अपने काव्य में चमत्कारातिशय का आधान किया है। साथ ही नवयुग के भावों का समावेश भी किया गया है। इनके अतिरिक्त भारतचन्द्रनाथ ने (१९५२) सौन्दर्यजलहरी, प्रमोदचन्द्र मिश्र ने (१९५६) विमला लहरी, रसिकलाल पटेल पूर्णलहरी, श्री भाष्यम विजय सारथी (१९३६) ने विषादलहरी, रामलखन पाण्डेय ने गीतिका लहरी लिखी है। गीत-संग्रह जिसमें ६१ गीत हैं। इस गीत-संग्रह में आधुनिक काल में मनुष्य के पतन को दर्शाया गया है। श्री के.आर. सुब्रह्मण्यम् ने अनुकम्पा लहरी लिखी है। शतावधानी आर. गणेश (१९६२) ने श्रीकृष्ण लहरी और श्रृंगारलहरी, रुद्रदेव त्रिपाठी (१९५२-१९९८) ने गायत्री लहरी और बटुक भैरवलहरी तथा श्रीराम भि. वेलखकर (१९१५) विरह लहरी लिखी है। जिसमें उन्होंने २५ गीतों को सम्मिलित किया है। अभिराजराजेन्द्र मिश्र के द्वारा विषादलहरी, रामभद्राचार्य ने सरयूलहरी, श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने मातृलहरी तथा भास्कर पिल्ले के द्वारा प्रेमलहरी काव्य लिखे गए।

इसी परम्परा में राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम भी आता है जिनके द्वारा लहरीदशकम् का प्रणयन किया गया है। जिसका प्रथम प्रकाशन १९९१ ई. संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय व द्वितीय संस्करण का प्रकाशन हिन्दी अनुवाद सहित २००३ में प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली से हुआ है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह दश लहरियों का संग्रह है-

१. बसन्तलहरी- इसमें ५३ श्लोक, बसन्तलिका छन्द है। आधुनिक जीवन के अतिभौतिकवादी

समय में वसन्त के अनुभव को इसमें व्यक्त किया गया है।

२. निदाघलहरी- इसमें ५१ श्लोक, पर्यावरण की समस्या व अत्यधिक ग्रीष्म ऋतु के कुप्रभाव का वर्णन किया गया है।

३. प्रावृड्लहरी- पाँच-पाँच श्लोकों का दस गीति हैं, अर्थात् कुल ५० श्लोक में जल संकट पर चिन्ता व्यक्त की गयी है।

४. धारित्रीदर्शनलहरी- पाँच-पाँच उन्मेश की ग्यारह अर्थात् ५५ श्लोक में वायुयान से पृथ्वी दर्शन का वर्णन किया गया है, जिसमें कवि ने अपनी जर्मन यात्रा का वर्णन किया है।

५. जनतालहरी- ५० श्लोक हैं, कवि के द्वारा इसमें सामाजिक विसंगतियों और निराशा के बीच जीवन जीने का मार्ग बतलाया गया है।

६. रोटिकालहरी- ५२ श्लोक हैं, यह अन्नं वै ब्रह्म की परम्परा से प्रारंभ होकर सामाजिक विसंगति पर केन्द्रित यह लहरी है।

७. नर्मदालहरी- इसमें ५५ श्लोक है, नर्मदा नदी की महत्ता को कवि के द्वारा सुन्दर भावभूमि में उपस्थित किया गया है।

८. मृत्तिकालहरी- इसमें ५० श्लोक हैं, सादा जीवन, उच्च विचार पर जोर देते हैं। इसमें धन, पद और प्रतिष्ठा पर व्यंग्य किया गया है तथा साथ ही मिट्टी की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है।

९. अद्यापिलहरी- ५० श्लोक हैं, इसमें जीवन के संघर्षों को प्रदर्शित किया गया है। विशेष रूप से हिन्दू-मुस्लिम विवाद पर विचार व्यक्त किया गया है। जिसे सांस्कृतिक दृष्टि से अनुचित माना गया है।

१०. प्रस्थानलहरी- ५० श्लोक हैं, इसमें यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय मन के संकल्प-विकल्प को प्रस्तुत किया गया है।

यह दशलहरियों का समुच्चय है। जिसकी प्रारम्भिक लहरी वसन्तलहरी है। इसमें जीवन के अतिभौतिकवादी समय में वसन्त के आने के अनुभव को आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

शब्दा यथा स्मृतिमुपेत्य पुनर्विलीना
सीदन्ति चित्तजगति क्वचिदेककोणे।
उद्भिद्यतेऽथ च विनाशमुपैति सद्यः
काव्याङ्कुरः कविमनसु तथा वसन्तः।।

(वसन्तलहरी - १)

जिस प्रकार शब्द स्मृति तक आकर लीन हो जाते हैं और चित्त के किसी कोने में तड़पते रहते हैं। कविता का अंकुर कवि के मन में अंकुरित होकर नष्ट हो जाता है। ठीक उसी प्रकार आधुनिक काल में वसन्त थम सा गया है। यहाँ कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग किया है, जिसका भाव यह है कि आधुनिक काल में जिस प्रकार बात करना या काव्य रचना कठिन होती जा रही है, उसी प्रकार वसन्त का अनुभव भी कठिन हो गया है। ऋतुओं में वसन्त को ऋतुराज कहा जाता था, उसका भी अनुभव आज लोग नहीं कर

पा रहे हैं। कविता, कहानी और काव्य के प्रति भी लोग उदासीन हो गये हैं। कालिदास ने मधुमास की मादकता के रूप में वसन्तऋतु को ऋतुसंहार में चित्रित किया है, लेकिन आज का व्यक्ति, समाज और समय सब कुछ बदल गया है। सबकी रुचि, तथा बुद्धि बदल गयी है, सबके विचार और अभिव्यक्ति के माध्यम बदल गये हैं। राधावल्लभ त्रिपाठी लहरी काव्यों के परम्परागत विषयों से हटकर समकालीन सन्दर्भों के साथ एक नयी सोच और दृष्टि को अपने लहरीदशकम् में उकेरते दिखाई देते हैं। कविवर त्रिपाठी इसमें देश, दुनियाँ, धरती, पर्वत, नदी, तीर्थ-स्थल, खेत-किसान, मजदूर की बात करते हैं। वे हांसिये के समाज को उपस्थित करते हैं तथा पर्यावरण की समस्या, धर्मान्धता, भ्रष्टाचार को लेकर अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए राष्ट्र के उन्नयन की एक अभिनव दृष्टि भी प्रदान करते दिखाई देते हैं। वनों की कटाई तथा वनों में विशाल भवनों के निर्माण कार्य को लेकर कविवर राधावल्लभ त्रिपाठी कहते हैं-

विस्थाप्य पूर्वलसितं सहकारकुञ्जं
स्वैरं प्रसर्पतितरां गुरुसौधपुञ्जः।
अन्तर्निगीर्य स परः प्रकृतं समस्तं
कामं विजृम्भत इवातिशयोक्तिकास्ये।।

(वसन्तलहरी - ६)

अर्थात् विशाल भवनों का समूह पहले से शोभित आ रहे आम के कुंज को हटाकर मनमानी से फैलता जा रहा है। जिस तरह अतिशयोक्ति से भरी कविता में प्रकृत (प्रस्तुत) को अपने भीतर निगल कर अप्रस्तुत जमुँहाई लेता है। कवि यहाँ पर वृक्षों की कटाई और वहाँ भवनों के निर्माण के साथ जो अतिशयोक्ति अलंकार का वर्णन किया है वह अद्भूत है। अतिशयोक्ति अलंकार के विषय में भी यही कहा जाता है कि उपमान के द्वारा प्राकृत अर्थात् उपमेय का निगरण करके उसके साथ कल्पित अभेद दिखाया जाता है। जब वृक्षों की बात आती है या पर्यावरण-संरक्षण की बात आती है तो पण्डितराज जगन्नाथ की यह पंक्ति बहुत प्रासंगिक हो जाती है-

धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां
घर्मव्यथां वहति शीतभवां रुजं च।
यो दहमर्पयति चान्यसुखस्य हेतो
स्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु।।

(भामिनि विलास ९२)

अर्थात् जो फूलों, पत्तों और फलों का बोझ ढोता है, घाम से पैदा होने वाली पीड़ा और जाड़े से उत्पन्न होने वाले कष्ट का अनुभव करता है तथा दूसरे के सुख के लिए अपने शरीर को भी समर्पित कर देता है। उस महादानियों में श्रेष्ठ वृक्ष को नमस्कार है। वृक्षों के प्रति यह भाव संस्कृत जगत् में विद्यमान है। उसी जगत् मे पले-बढ़े राधावल्लभ त्रिपाठी इसीलिए दु:खी हो जाते हैं। उन्हें वृक्षों, वनों की जगह बड़े-बड़े महल कदापि स्वीकार नहीं हैं।

कालिदास भी 'पातुं न प्रथम व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु' से पर्यावरण संरक्षण की ही बात करते हैं। उसी तरह आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी समाज हित में पर्यावरण का संरक्षण करना चाहते हैं, जिसके लिए वे उसकी भीषणता दिखलाते हुए लिखते हैं-

जना अन्नजलाभावाद भ्रामं भ्रामं दिवंगताः।
इरणे तृषिताः क्षीणां भ्राम्यन्तः पशवो यथा।
राजस्थाने भृता बाला पिपासाकुलिता नव।
तथा गुर्जरदेशेऽपि मृता गावो बुसं बिना।।

(निदाघ ६-७)

अर्थात् लोग अन्न और जल के अभाव में भटकते-भटकते मर जाते हैं जिस तरह मरुस्थल में प्यासे क्षीण पशु भटक-भटक कर मर जाते हैं। राजस्थान प्यास से व्याकुल नौ बच्चे मर गये और गुजरात में भूसा के अभाव में गायें मर गयी, यह तत्कालीन समाचार पर आधारित है। संस्कृत साहित्य में गाय की संरक्षण-संवर्धन की बात की गयी है। रघुवंश महाकाव्य में राजा दिलीप नन्दिनी धेनु की सेवा करते हैं। यहाँ कवि के द्वारा गौसेवा का कटाक्ष किया गया है-

गोमाता म्रियते लोका बुसं देयं तृणादिकम्।
इत्याह्वयति धर्मात्मा नेता चैवानुभाववान्।।
तृणानां प्रेषयन् राशीर्गोभ्यो यानेन सत्त्वरम्।
भ्रियन्तेऽत्र नराः क्षुद्भ्य इति किं नैव पश्यति।।

(निदाघ ८-९)

अर्थात् लोगो गोमाता मर रहीं हैं। इसके लिए भूसा और चारा दो, धर्मात्मा और प्रभावशाली नेता इस प्रकार आह्वान कर रहा है। वह वाहनों से घास की राशि गायों के लिए भिजवाता हुआ यह क्यों नहीं देखता कि मनुष्य भी मर रहे हैं। कवि यह बात कृत्रिम धार्मिक भावना वाले भक्ति के लिए कही है कि दिखावे में गाय की संरक्षण-सम्वर्धन की बात करता है, परञ्च मनुष्यों की चिन्ता नहीं करता है। लेखक ने अपने ही समाज के लोगों के प्रति संवेदनहीन पूर्ण व्यवहार को प्रकट किया है। लोगों को गाय की तरह मनुष्य की भी चिन्ता करनी चाहिए।

वन्य-पशुओं के संरक्षण-संवर्धन की बात कालिदास भी करते दिखाई देते हैं। वाणभट्ट के हारित को कौन भूल सकता है? जो भूखे-प्यासे शूक को पानी पिलाता है और आश्रम ले जाता है यहाँ जो भाव है वह स्वाभाविक है, लेकिन आज जो गोपालन का आडम्बर किया जा रहा है वह क्या कहना चाहता है या कर रहा है।

राधावल्लभ त्रिपाठी समाज को सत्य का दर्शन कराना चाहते हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का उन्मूलन ही लहरीदशकम् का उद्देश्य है। वे वर्षा ऋतु में बच्चे के कागज़ के नाव की उपमा लोकतन्त्र में मताधिकार से करते हुए कहते हैं-

गर्ताम्भस्यददुर्डिम्भा नौकां कार्गजनिर्मिताम्।
प्रजातन्त्रोदधौ मुग्धैर्जनैर्दत्तं मतं यथा।।
सीकर सुखदश्लेष श्रमिकस्य तनौ पतन्।
पुष्पासारैर्नभागंगाजलाद्यैः स्नपयत्यमुम।।

(प्रावृड, ९-४५)

गड्ढे के पानी में लड़कों ने कागज की नाव पानी में इसी प्रकार बहा दिया, जिस प्रकार प्रजातन्त्र के महासागर में लोगों के द्वारा मत को बहा दिया जाता है। वर्षा की सुखद फुहार श्रमिक के तन पर गिरती हुई उसके आकाश गंगा से गिरी फूलों की बौछार से नहला रही है। वर्षा के सम्बन्ध में इसी तरह का वर्णन कालिदास अपने मेघदूत में भी करते हैं। वर्षा की सुखद अनुभूति ही तो साहित्यकार के सहृदय की परिचय मानी जाती है। जिसकी अनुभूति कालिदास भी करते हैं और राधावल्लभ त्रिपाठी भी। वे धरित्री लहरी में पृथ्वी की सहनशीलता और पृथ्वी को माता मानते हुए लिखते हैं-

यद्वा सर्व सहसे इति ते नाम सर्वंसहेति
पापाचाराः कति कतिविधाः किं भवत्या न सोढ़ाः।
क्षान्तिः क्षमे ते क्षणमपि मनाक् प्रानुते नैव लोपं।
माता वा स्यात् कुतनयजनेः किं कदाचित् कुमाता?।।

अर्थात् तुम सब कुछ सह लेती हो इसलिए तुम्हारा नाम सर्वसहा है। पहले भी क्या तुमने कितने-कितने प्रकार के पापाचार नहीं सहे? हे क्षमे (धरती) तुम्हारी सहनशीलता तनिक भी लुप्त नहीं होती है। बुरी सन्तान के जन्म लेने से माता क्या कभी कुमाता हो सकती है? अर्थात् नहीं। राधावल्लभ त्रिपाठी अपने जनता लहरी में जनता की आवाज बनकर बोलते हैं। वे जनता की पीडा कष्ट को बहुत समीप से देखते और जानते हैं। वे अपनी जनता के प्रति भावना यहाँ इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

नाहं स्तौमि वयामि नैव मसृणं चीनांशुकं स्वैः पदैः
शब्दैर्नो रचयामि कृत्रिमसुमैश्चित्रां विचित्रां स्रजम्।
एषा सा सहजं विभावितगुणा मे मानसे संस्थिता
व्यक्तिं स्वस्य करोति चैव जनता वाग्भिर्ममैषा ध्रुवम्।।

(जनता - १२)

मैं किसी की स्तुति नहीं करता, अपने शब्दों से महीन मतलब नहीं बुनता, नकली फूलों के समान किन्हीं शब्दों से विचित्र सुन्दर नहीं गूँथता। मेरे मानस में सहज विभावितगुण वाली जनता आसीन है, निश्चित रूप से वही मेरे भीतर से वाणी के द्वारा अपने आपको व्यक्त करती है। वे पुनः कहते हैं-

वसनं परिधूसरं वसाना नितरां
क्षाममुखी हृतस्वरूपा।
अतिनिष्करुणेन केन नीता
जनतैषा कटिनां दशां विषण्णा।।

(जनता - २२)

धूल से सने वस्त्र पहने अत्यन्त दुर्बल मुख वाली जिसका स्वरूप बिगड़ गया है। ऐसी यह जनता किस अति निष्करुण के द्वारा ऐसी कठिन दशा को पहुंचा दी गयी है। पुनः कहते हैं-

को जानीते हृदयं को वै तस्याः कथां व्यथां शृणोति।
कुररीवद् कान्तारे जनता करुणं कथं विरौति।।

(जनता - २३)

जनता के मन की बात कौन जानता है। कौन इसकी व्यथा को सुनता है? भले ही कान्तार में कुररी के समान जनता करुणा विलाप करती रहे।

इनकी रोटिका लहरी, अन्नं वै ब्रह्म पर केन्द्रित है। देश की सबसे बड़ी समस्या भूख की है। आज रोटी के लिए ही किसान आत्महत्या कर रहे हैं और नेता अपनी-अपनी रोटी सेंक रहे हैं

केन कस्याननाद् रोटिकेयं बला
छिद्यते विस्मोत्सेकमूढेन वै।
मानवानां तथा शोणितैराचिता
फुल्लगल्लैरभल्लं वृथा चर्व्यते।

(रोटिका-३१)

किसके द्वारा अहंकार और दर्प से मूढ बनकर किसी के मुँह से बलपूर्वक यह रोटी छीनी जा रही है। मनुष्य के खून से इसे रंगकर कौन इसे गाल फूला कर व्यर्थ चबा रहा है। यह पंक्ति हिन्दी के कवि सुदामा प्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' की कविता रोटी और संसद से मेल खाती है-

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है।
मैं पूछता हूँ-
यह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है।

पुन: राधावल्लभ त्रिपाठी जी लिखते हैं-

किं न लालप्यते राटिकाया: कृते
किं न तातप्यते रोटिकाया: कृते।
किं न सासह्यते किं न मोमुह्यते
किं न शोश्रुयते किं न बोभूयते।।

(रोटिका - २९)

अर्थात् रोटी के लिए क्या-क्या नहीं कहा जाता है, रोटी के लिए कितना नहीं तपा जाता, रोटी के लिए क्या-क्या नहीं सहा जाता, क्या-क्या नहीं सुना जाता, क्या-क्या नहीं होता दिखाई देता है। अर्थात् सब कुछ व्यक्ति रोटी के लिए ही करता है। उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रोटी है। वह रोटी के लिए ही-

रोटिका राजते पूर्णमुक्ताकृति:
स्वादिता चापि नित्यं नवास्वादिता।
मानवानामखण्डस्य पुण्यस्य सा
केवलं चैकमस्ति प्रकृष्टं फलम्।।

(रोटिका - ५)

मोती की आकृति वाली रोटी पूर्णरूप से सुशोभित होती है। उसका स्वाद बार-बार लिया जाता है, फिर भी वह नये स्वाद वाली बनी रहती है। वह मनुष्यों के अखण्ड पुण्य का एक प्रकृष्ट फल है। आगे वे कहते हैं-

निर्धनास्ते जना कामयन्ते सदा
तां तथा बालकाश्च क्षुधा पीडिता:।
आद्रियन्ते भृशं तत्र ते कर्षिता
कर्षका कर्मजीवा: श्रमैकव्रता।।

(रोटिका - २१)

अर्थात् निर्धन जन तथा क्षुधा पीड़ित बालक सदा उसकी कामना करते रहते हैं। श्रम, जीवी, श्रम का व्रत धारण करने वाले तथा कृषक उसके प्रति आकर्षित होकर बहुत आदर भाव रखते हैं।

वे आगे लिखते हैं-

कर्षिता भ्रामिताः के न यस्याः कृते
जीवितः मानवा वा यया जातया
सैव केन्द्रस्यिता काष्ठपुत्रान् यथा
नर्तयन्ती जनान् राजते रोटिका।।

(रोटिका - २३)

अर्थात् कौन-कौन भला रोटी के लिए तरस कर भटकते नहीं फिरे? मनुष्य इसी के होने से जीवित रहता है। वही रोटी केन्द्र में रहकर पुतलियों की तरह लोगों को नचाती हुई शोभित हो रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य त्रिपाठी जी का लहरीदशकम् में जन-सामान्य के प्रति गहरा अनुराग और उनसे यथार्थ सहानुभूति का भाव अन्तर्निहित है। यहाँ वे एक जनवादी कवि के रूप में दिखाई देते हैं। वृक्ष, नदी, पशु, पक्षी, ऋतु परिवर्तन से लेकर कृषक और श्रमिक-वर्ग की जिन समस्याओं को उन्होंने साहित्य-पटल पर लाने का प्रयास किया है, वह अद्‌भूत है। समाज की समस्या जब साहित्य पटल पर जाने लगती है तब उन समस्याओं की आयु घट जाती है। इसी उद्‌देश्य से राधावल्लभ त्रिपाठी समस्याओं को साहित्य पटल पर लाने का प्रयास करते दिखाई देते हैं।

- सहायक-आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर - 470003 (म. प्र.) मो. 08989713997
Email- drkumarsanjaybhu@gmail.com

प्रभु श्रीराम की अयोध्या - रामचरितमानस में

- सुश्री स्नेह लता

अयोध्या का अर्थ है अ - योध्या अर्थात् जिसे युद्ध के द्वारा न प्राप्त किया जा सके। प्रभु श्रीराम का जन्म इसी अयोध्या नगरी में हुआ था। स्कन्दपुराण के अनुसार सरयू के तट पर दिव्य शोभा से युक्त दूसरी अमरावती के समान अयोध्या नगरी है। रामचरितमानस में अयोध्या नगरी का सुन्दर वर्णन है। जब चौदह वर्ष के बनवास के बाद राम अयोध्या के राजा बने वह समय सच्चा रामराज्य था। राम की अयोध्या नगरी का विस्तार से वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है-

भूमि सप्तसागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला।।
भुअन अनेक रोम प्रति जासू।
यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।।

उत्तरकाण्ड २१.१

अयोध्या में श्री रघुनाथ जी सात समुद्रों की मेखला वाली (करधनी) पृथ्वी के एकमात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोम में अनेकों ब्रह्माण्ड हैं, उनके लिए सात द्वीपों की यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं है।

फूलहिं फरहिं सदा गिरि कानन।
रहहिं एक संग गज पंचानन।।
खग मृग सहज बयरू बिसराई।
सबन्धि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

उत्तरकाण्ड २२.१

वनों में वृक्ष सदा फूलते और फलते हैं। सिंह और हाथी (बैर भूलकर) एक साथ रहते हैं। पक्षी ओर पशु सभी ने स्वभावकि बैर भाव भुलाकर आपस में प्रेम बढ़ा लिया है।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा।
अभहिं चरहिं बन करहिं अनंदा।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा।
गुंजत अलि नै चलि मकरंदा।।

उत्तरकाण्ड २२.२

पक्षी कूजते हैं, भांति-भांति के पशुओं की समूह वन में निर्भय विचरते और आनंद करते हैं। शीतल मंद सुगंध पवन चलता रहा है। भौंरे पुष्पों का रस लेकर चलते हुए गुंजार करते जाते हैं।

लता विटप मांगे मधु चवहीं।
मनभावते धेनु पय स्त्रवहीं।।
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी।
त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।।

उत्तरकाण्ड २२.३

बेलें और वृक्ष मांगने से ही मधु टपका देते हैं गौएं मनचाहा दूध देती है। धरती सदा खेती से भरी

रहती है। त्रेता में सतयुग की करनी (स्थिति) हो गई।

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी।
जगदातमा भूप जग जानी।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।

उत्तरकाण्ड २२.४

समस्त जगत् के आत्मा भगवान् को जगत् के राजा जानकर पर्वतों ने अनेक प्रकार की मणियों की खानें प्रकट कर दीं। सब नदियां श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुखप्रद स्वादिष्ट जल बहाने लगीं।

सागर निज मरजादाँ रहहीं।
डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा।
अति प्रसन्न दस दिसा विभागा।।

उत्तरकाण्ड २२.५

समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। वे लहरों के द्वारा किनारों पर रत्न डाल देते हैं जिन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमल से पपूर्ण हैं। दसों दिशाओं के विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यंत प्रसन्न है।

विधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मांगे बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज।।

उत्तरकाण्ड २३

श्रीरामचंद्र जी के राज्य में चंद्रमा अपनी किरणों से पृथ्वी को पूर्ण कर देते हैं। सूर्य उतना ही तपते हैं जितनी आवश्यकता होती है और मेघ मांगने से जल जहाँ जितना चाहिए उतना ही जल देते हैं।

जात रूप मनि रचित अटारीं।
नाना रंग रुचिर गच डारीं।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर।
रचे कंगूरा रंग रंग बर।।

उत्तरकाण्ड २६.२

दिव्य रत्नों से भरी हुई अटारियाँ हैं। उनमें मणि रत्नों की अनेक सुंदर ढली हुई फर्शें हैं। नगर के चारों ओर अत्यंत सुंदर परकोटा बना है जिस पर सुन्दर रंग बिरंगे कंगूरे बने हैं।

नव ग्रह निकर अनीक बनाई।
जनु घेरी अमरावति आई।।
महि बहु रंग रचित गच काँचा।
जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा।।

उत्तरकाण्ड २६.३

मानों नवग्रहों ने बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावती को आकर घेर लिया हो। पृथ्वी सड़कों पर अनेकों रंगों के दिव्य कांचों रत्नों की गच बनाई गई है, जिसे देखकर श्रेष्ठ मुनियों के भी मन नाच उठते हैं।

धबल धाम ऊपर नभ चुंबत।
कलस मनहुँ रवि ससि दुति निंदत।।
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं।
गृह गृह मनि दीप बिराजहिं।।

उत्तरकाण्ड २२.४

उज्जवल महल ऊपर आकाश को चूम रहे हैं। महलों पर के कलश अपने दिव्य प्रकाश से मानो सूर्य चंद्रमा के प्रकाश की भी निंदा करते हैं।

महलों में बहुत सी मणियों से रचे हुए झरोखे सुशोभित हैं और घर-घर में मणियों के दीपक शोभा पा रहे हैं।

मनि दीप राजहिं भवन
भ्राजहिं देहरीं विद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची
कनक मनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत
अजिर रूचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट
बनाई बहु बज्रन्हि खचे।।

उत्तरकाण्ड २७

घरों में मणियों के दीपक शोभा दे रहे हैं। मूंगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही हैं। मणियों के खंभे हैं। मरकतमणियों पन्नों से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुंदर हैं मानो ब्रह्मा ने खासतौर से बनाई हों। महल सुंदर, मनोहर और विशाल हैं। उनमें सुंदर स्फटिक के आँगन बने हैं। प्रत्येक द्वार पर बहुत से खरादे हुए हीरों से जड़े हुए सोने की किवाड़ हैं।

चारू चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाई।
रामचरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ।।

उत्तरकाण्ड २७

घर-घर में सुंदर चित्र शालाएं हैं जिनमें श्रीरामचंद्र जी के चरित्र बड़ी सुंदरता के साथ संवार कर अंकित किए हुए हैं। जिन्हें मुनि देखते हैं तो वे उनके भी चित्त को चुरा लेते हैं।

सुमन वाटिका सबहिं लगाईं।
विविध भांति कर जतन बनाईं।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं।
फूलहिं सदा बसंत कि नाईं।।

उत्तरकाण्ड २७.१

सभी लोगों ने विभिन्न प्रकार की पुष्पों की वाटिकाएं यत्न करके लगा रखी हैं, जिनमें बहुत जातियों की सुंदर और ललित लताएं सदा बसंत की तरह फूलती रहती है।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर।
मारूत त्रिविध सदा बह सुन्दर।।
नाना खग बालकन्हि जिआए।
बोलत मधुर उड़ात सुहाए।।

उत्तरकाण्ड २७-२

भौंरे मनोहर स्वर से गुंजार करते हैं। सदा तीनों प्रकार की सुंदर वायु बहती रहती है। बालकों ने बहुत से पक्षी पाल रखे हैं जो मधुर बोली बोलते हैं और उड़ने में सुंदर लगते हैं।

मोर, हंस, सारस, पारावत।
भवननि पर सोभा अति पावत।।
जहँ जहँ देखहिं निज परछाहीं।
बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।

उत्तरकाण्ड २७-३

मोर, हंस, सारस और कबूतर घरों के ऊपर बड़ी शोभा पाते हैं। वे पक्षी मणियों की दीवारों में और छत में जहां-तहां अपनी परछाई देखकर वहां दूसरे पक्षी समझकर बहुत प्रकार से मधुर बोली बोलते और नृत्य करते हैं।

सुक सारिका पढावहिं बालक।

कहहु राम रघुपति जनपालक।।

राज दुआर सकल बिधि चारू।

बीथीं चौहट रूचिर बजारू।।

उत्तरकाण्ड २७-४

बालक तोता और मैना को पढ़ाते हैं कि कहो- राम, रघुपति, जनपालक। राज द्वार सब प्रकार से सुंदर है। गलियाँ चौराहे और बाजार सभी बहुत सुंदर हैं।

बाजार रूचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनुहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।

उत्तरकाण्ड

सुन्दर बाजार हैं जो वर्णन करते नहीं बनता है। वहां वस्तुएं बिना ही मूल्य मिलती है। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों, वहाँ की संपत्ति का वर्णन कैसे किया जाए? बजाज कपड़े का व्यापार करने वाले, सराफ रुपए पैसे का लेनदेन करने वाले आदि बड़े व्यापारी बैठे हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानो अनेक कुबेर हों। स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े जो भी हैं, सभी सुखी, सदाचारी और सुंदर हैं।

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बांधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर।।

उत्तरकाण्ड २८

नगर के उत्तर दिशा में सरजू बह रही है, जिनका जल निर्मल और गहरा है। मनोहर घाट बंधे हुए हैं, किनारे पर जरा भी कीचड़ नहीं है।

दूरि फराक रूचिर सो घाटा।

जहँ जल पियहिं बाजि गज ठाटा।।

पनिघट वरम मनोहर नाना।

तहाँ न पुरूष करहिं अस्नाना।।

उत्तरकाण्ड २८.१

अलग कुछ दूरी पर सुंदर घाट है जहां घोड़ों और हाथियों के समूह के समूह जल पिया करते हैं। पानी भरने के लिए बहुत से घाट हैं, जो बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पुरुष स्नान नहीं करते।

राजघाट सब बिधि सुंदर बर।

मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।

तीर तीर देवन्ह के मन्दिर।

चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर।।

उत्तरकाण्ड २८.२

राजघाट सब प्रकार से सुंदर और श्रेष्ठ हैं, जहाँ चारों वर्णों के पुरुष स्नान करते हैं। सरजू के किनारे किनारे देवताओं के मंदिर हैं जिनके चारों ओर सुंदर बगीचे हैं।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी।

बसहिं ग्यान रत मुनि सन्यासी।।

तीर तीर तुलसिका सुहाई।

बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।

उत्तरकाण्ड २८.३

नदी के किनारे कहीं कहीं विरक्त और ज्ञान परायण और सन्यासी निवास करते हैं। सरजू के किनारे किनारे सुंदर तुलसी जी के झुंड के झुंड बहुत से पेड़ मुनियों ने लगा रखे हैं।

पुर सोभा कछु बरनि न जाई।

बाहेर नगर परम रूचिराई।।

देखत पुरी अखिल अघ भागा।
बन उपबन बापिका तड़ागा।।

उत्तरकाण्ड २८.४

नगर की शोभा कुछ कही नहीं जाती। नगर के बाहर भी परम सुंदरता है। श्री अयोध्या पुरी के दर्शन करते ही संपूर्ण पाप भाग जाते हैं। वहाँ वन, उपवन, बाबलियाँ और तालाब सुशोभित हैं।

वापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सूर मुनि मोहहीं।।
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।

अनुपम बावलियाँ, तालाब और मनोहर और विशाल कुएँ शोभा दे रहे हैं, जिनकी सुंदर रत्नों की सीढ़ियां और निर्मल जल देखकर देवता और मुनि तक मोहित हो जाते हैं। तालाबों में अनेकों रंग के कमल खिल रहे हैं अनेकों पक्षी कूज रहे हैं और भंवरे गुंजा कर रहे हैं। रमणीय बगीचे कोयल आदि पक्षियों की बोली से चलने वाले राहगीरों को बुला रहे हैं।

स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् जहां राजा हो उस नगर का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

अयोध्या का यह वर्णन प्रभु श्रीराम के राज्य में था। वर्तमान समय में अयोध्या को पुन: उसका गौरव दिलाने के लिए प्रयास किया जा रहा है। प्रभु श्रीराम का भव्य मन्दिर निर्मित हो रहा है। सरयू के घाटों को सुन्दर वृक्ष लगा कर संवारा गया है। सरयू के तट पर बने मन्दिरों के सुन्दर स्वरूप निखरने लगे हैं। मार्गों को चौड़ा करके रामपथ, लक्ष्मण पथ बनाया जा रहा है। विश्वस्तरीय सुविधाएं प्रदान करने की दिशा में सरकार निरन्तर प्रयास रत है। वह दिन दूर नहीं जब अयोध्या रामचरितमानस में वर्णित स्वरूप को पुन: प्राप्त करेगी और विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बनाएगी।

- 1/309, विकास नगर, लखनऊ (उ. प्र.)।
मो. 9450639976

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७२, सं. ९
दिसम्बर ,२०२३

वर्तमान समय में मूल्यशिक्षा की आवश्यकता

- संदीप कुमार शर्मा

मूल्य शिक्षा का अर्थ- मूल्य एक अमूर्त गुण है जो किसी वस्तु में निहित होता है तथा उसके महत्त्व की ओर इंगित करता है। अर्थात् मूल्यपरक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जिनमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य समाहित हो ताकि छात्रों के व्यक्तित्व का सन्तुलन और सर्वतोन्मुखी विकास हो सके।

मूल्य से तात्पर्य (Value) से है। Value शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द से मानी जाती है। अर्थ है कीमत या उपयोगिता। हिन्दी में मूल्य शब्द के पर्याय के रूप में आदर्श, शील, गुण, आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मूल्य शिक्षा का अर्थ इस प्रकार से मूल्यों की शिक्षा या मूल्यपरक शिक्षा है। इसके अन्तर्गत सभी विषयों में मनोवैज्ञानिक ढंग से समाहित करके नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर बल दिया जाता है।

मूल्य (Value) पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र के मूल्यों में अन्तर होता है। एक समाज में जिन मूल्यों का महत्त्व सर्वोपरि होता है, दूसरे समाज में वे महत्त्वहीन हो जाते हैं, व्यक्ति अपने सामाजिक मूल्यों के अनुरूप बनने अथवा इन्हें प्राप्त करने के लिए अग्रसर एवं प्रयत्नशील रहता है और उनके माध्यम से समाज में अपना स्थान बनाने का प्रयन्त करता है। जाति, समाज, राष्ट्र के मूल्यों में विभिन्नताएँ होते हुए भी मानव-मूल्यों समान होते हैं। जैसे अंहिसा, सत्य, अपरिग्रह, प्रेम, सहानुभूति, परोपकार आदि।

अर्बन के अनुसार, ''मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की सन्तुष्टि करे'' प्रत्येक समाज के कुछ आदर्श हैं जिन पर सामाजिक प्रगति तथा परिवर्तन की दिशा निर्भर करती है। समाज समूह में जो भी घटनाएँ घटित होती है समाज द्वारा उनको उचित या अनुचित ठहराया जाता है और ये ही प्रमाप मूल्य कहलाते हैं। मूल्य निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है सामाजिक प्रगति के मूल्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

सामाजिक परिस्थितियाँ तथा विषयों के मूल्यांकन की प्रक्रिया को मूल्य कहते हैं। समाज के उचित प्रमाण तथा संस्कृति के इन धरोहरों को शिक्षा के माध्यम से विकसित करने को ही मूल्यशिक्षा कहते हैं। मूल्य-शिक्षा के द्वारा

विद्यालय स्तर पर ही बालकों में मूल्यों को पर्याप्त रूप विकसित किया जा सकता है।

आलपोर्ट- व्यक्ति की रूचि का सापेक्षिक महत्त्व अथवा व्यक्तित्त्व की प्रबल इच्छा मूल्य कहलाता है।

कनिंघम के अनुसार शिक्षा- मूल्य शिक्षा के उद्देश्य बन जाते है। इन्हीं के अनुसार व्यक्ति के गुणों, योग्यताओं तथा क्षमताओं को विकसित किया जाता है, जो जीवन मूल्यों में निहित होते हैं। अन्तोगत्वा निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि मूल्य समाज के साथ स्वीकृत होते हैं, वास्तव में मूल्य समाज के आदर्श होते हैं, जो मानव के दैनिक जीवन के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। यह मूल्य आध्यात्मिक, लौकिक दोनों प्रकार के हैं। जिन्हें शिक्षा द्वारा छात्रों के योग में समाविष्ट किया जा सकता है।

मूल्यों के ह्रास के कारण- वर्तमान काल में हमारे देश में प्राचीन गौरवशाली परम्पराओं के अविश्वास के वातावरण में सभी मूल्य धूमिल से हो गये हैं। आधुनिकता की चकाचौंध और पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण आदि के कारण अतीत में अविश्वास एवं स्व में अनास्था से पुराने मूल्य प्रदूषित हो गए है। इस आधार पर मूल्यों के ह्रास के निम्न कारण हो सकते हैं-

१. समाज पर सिनेमा का प्रभाव।
२. समाज में सरोकार हीनता की स्थिति।
३. आधुनिक समय में विभिन्न प्रकारों के वाद का प्रचार-प्रसार।
४. आध्यात्मिकता एवम् आस्था की भावना का क्षीण होना।
५. औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा जनसंख्या विस्फोट।
६. तर्क और बौद्धिकता का आधिक्य।
७. कर्णधारों की कथनी और करनी में अंतर।
८. असुरक्षा की बढ़ती हुई भावना।
९. विघटनकारी प्रवृत्तियाँ।
१०. पश्चिमीकरण का बढ़ता प्रभाव आदि।

मूल्य शिक्षा की अवश्यकता-

१. सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा को एक सशक्त बनाने हेतु पाठयक्रम में पुनः समायोजन करने की आवश्यकता है।
२. अनैतिक कार्यों के विरोध का भाव जाग्रत करना।
३. जीवन शैली में उन्नयन का आधार।
४. हमें शिक्षा को इस प्रकार मूल्यपरक बनाना चाहिए कि विद्यार्थी भविष्य के लिए तैयार हो सके।
५. मूल्य शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति वर्तमान में अपने अस्तित्व को पहचानने में समर्थ हो सके।
६. शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि बालक को आत्मविश्वासी बना सके।
७. सम्प्रति मूल्यों में आस्था रखने वाले कुशल कर्मचारी को तैयार करने के लिए मूल्यपरक

रोजगारोन्मुख शिक्षा अति आवश्यक है।

८. आज की परिस्थितियों में समाज के सदस्यों में भावात्मक समाकलन सुनिश्चित करने व समाज के लोगों के मन में मानवता के वृक्ष को रोपण करने की अत्यन्त जरुरत है। इस कार्य के लिए मूल्य शिक्षा अति आवश्यक है।

मूल्यों की स्थापना में शिक्षक की भूमिका-

आज शान्ति, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक सभी प्रकार के मूल्यों का विखण्डन हो रहा है। समाज में भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता,क्रूरता, हिंसा, अन्याय, धर्मान्धता, कुप्रवत्ति, लोभ लालच एवं स्वार्थपरता जैसी प्रवृत्तियों का वर्चस्व सर्वत्र व्याप्त है। ज्ञान की वृद्धि तो हो रही है, किन्तु नैतिकता समाप्त हो रही है। इस स्थिति में मानव जगत् को सुरक्षित करने के लिए मूल्योन्मुखी शिक्षा की अतीव आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जो व्यक्ति को, सत्य, अहिंसा, सद्भावना, विवेक, सामाजिकता और मानवीय दृष्टिकोण के प्रति उन्मुख करे। शिक्षा में आध्यात्मिकता, नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विकास करना आवश्यक है, क्योंकि इन मूल्यों में जीवन को संगठित करने की शक्ति है।

ऐसी स्थिति में बालकों में मूल्य की प्रस्थापना की प्रमुख भूमिका होती है। वह कक्षा वातावरण तथा विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं के माध्यम से बालकों में मूल्यों की स्थापना कर सकता है। एक शिक्षक कक्षा में बालकों को महत्त्व, उनकी स्थापना व जीवन में अपनाने के लाभों से परिचित करा सकता है, जिससे बालक भी यह अनुभव करें कि अपने जीवन में आदर्श व मूल्यों को ग्रहण करने से समाज में सद्भावना, मानवता का विकास होता है। शिक्षक प्रार्थना सभा में महापुरुषों के कार्यों से परिचित करवाकर, अपने सार्थक भाषण व विचारों से अवगत करके मूल्यों की प्रस्थापना में अपनी महत्ती भूमिका निभा सकता है।

समाज में शिक्षा मूल्य को प्रभावी बनाने के उपाय-

१. समाज को भाषायी आधार पर विखण्डित होने से रोकने के लिए सभी व्यक्तियों को किसी एक भाषा के महत्त्व को समझाते हुए उसे स्वीकार करना चाहिए, जिससे कि उसे राष्ट्रभाषा एवं विश्व की भाषा के रूप में स्वीकार किया जा सके।

२. समाज में सर्वप्रथम मानवता एवं नैतिकता का प्रचार-प्रसार करना चाहिए ।

३. समाज में प्रजातांत्रिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जाये, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको एक समान समझे तथा सभी मानव अपने विचार अभिव्यक्ति की स्वत्रन्ता प्राप्त कर सकें। विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता कैसी हो, विचारों की अभिव्यक्ति क्या है, उसका स्वरूप क्या होता है, इन बातों से भी समाज को परिचित होना जरूरी है। इसके बाद मूल्य शिक्षा को प्रारम्भ किया

जाये।

४. भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाये। जिससे भारतीय संस्कृति में विद्यमान आदर्शवादी, नैतिकवादी एवं मानवीय मूल्यों से शिक्षा के लिए आदर्श एवं सरल मार्ग तैया हो जाएगा।

५. समाज में जातिवाद के आधार पर विष घोलने वालों को दण्डित करना चाहिए।

६. समाज में व्यापक सोच को विकसित करने वाले कार्यक्रम चलायें जायें।

७. संचार साधनों के माध्यम से आदर्शवादिता एवं नैतिक आचरण वाले कार्यक्रम का निर्माण तथा प्रदर्शन करें।

८. समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़िवादी परम्पराओं को समाप्त करने की ओर ध्यान देना चाहिए।

९. उच्च आदर्शवादी एवं सामाजिक हित करने वाली परम्परा को विकसित किए जाने वाले कार्यक्रम यत्र-तत्र किए जाये।

१०. समाज में दोनों प्रकार की पवित्रता का प्रचार-प्रसार किया जाये, जिससे व्यक्ति बाहरी पवित्रता के रूप में दैनिक भोजन एवं अन्य वस्तुओं को आदि को महत्त्व दें तथा आन्तरिक पवित्रता के लिए आदर्शवादी मूल्य एवं योग, ध्यान इत्यादि को अपना सके।

अगर उल्लिखित बातों पर ध्यान दिया जाय और उस ओर प्रयत्न किया जाय तो वर्तमान समय एवं परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए मूल्य शिक्षा के द्वारा हम भावी पीढ़ी को सुसंकारित, चरित्रवान एवं आदर्श नागरिक बना सकते हैं, मूल्य शिक्षा की तरफ ध्यान न दिए जाने के कारण आज के समय में नवयुवक पाश्चातय संस्कृति के संपर्क में आकर राह भटक रहे हैं। एवम् उनमे अनेक प्रकार के दुर्गुण पनप रहे है। अतः समय एवं परिस्थितियों की माँग है कि वर्तमान समय में मूल्यशिक्षा पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे हमारी अपने वाली पीढ़ी श्रेष्ठ गुणों से युक्त हो और मानव जाति निरन्तर सदाचार के मार्ग पर बढ़ती रहे।

- केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर - 302018 (राज .)।

मो. 9887113275, Email : sharmasandeep.ss52@gmail.com

आत्मघाती है पर संपदा अथवा प्रकृति का विनाश करना

- सीताराम गुप्ता

मानस के उत्तरकांड में गोस्वामी तुलसीदास एक स्थान पर लिखते हैं कि पर संपदा बिनासि नसाहीं, जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं। अर्थात् दूसरों की संपत्ति को नष्ट करने वाले स्वयं नष्ट हो जाते हैं जैसे खेती का नाश करने के बाद ओला स्वयं भी नष्ट हो जाता है। आज के संदर्भ में तुलसीदास की ये पंक्ति अत्यंत प्रासंगिक व विचारणीय है। बात आज के बिगड़ते हुए भौतिक परिवेश अथवा पर्यावरण-प्रदूषण की हो अथवा हमारी जीवन शैली अथवा उदात्त जीवन मूल्यों की हम आत्मघाती होते जा रहे हैं। हम जिस डाल पर बैठे हैं उसी को काट रहे हैं। अपने लाभ के लिए ही नहीं दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए भी हम दूसरों का अहित करने में कम आनंद नहीं लेते लेकिन वास्तविकता ये है कि हमारा इस प्रकार का आचरण दूसरों के साथ-साथ हमारा भी उतना ही अहित कर रहा है जितना दूसरों का। दूसरों का अहित करने या होने देने के प्रयास में कई बार तो हम अपना सर्वनाश ही कर बैठते हैं।

एक कहानी याद आ रही है। एक माली और कुम्हार पास-पास रहते थे। माली सब्जियाँ उगाता था तो कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता था। उन दोनों के पास एक ऊँट था जिस पर वे दोनों ही अपना सामान लादकर पास के कसबे में ले जाकर बेच देते। एक बार दोनों ऊँट पर सामान लादकर कसबे की ओर जा रहे थे। ऊँट की पीठ पर एक ओर माली की सब्जियाँ लदी हुई थीं तो दूसरी ओर कुम्हार के बर्तन लदे हुए थे। माली ऊँट की रस्सी को पकड़े हुए आगे-आगे चल रहा था तो कुम्हार ऊँट के पीछे-पीछे। तभी अचानक ऊँट ने अपनी लंबी गरदन पीछे की ओर घुमाई और सब्जियाँ खाने लगा। कुम्हार ने ऊँट को सब्जियाँ खाते हुए देखा पर रोका नहीं। उसने अपने मन में कहा कि ऊँट माली की सब्जियाँ खा रहा है तो इससे मुझे तो कोई नुकसान नहीं होगा। ऊँट मेरे बर्तन तो खाने से रहा फिर मैं क्यों इसे सब्जियाँ खाने से रोकूँ।

कुछ ही देर में ऊँट काफी सब्जियाँ खा गया जिससे ऊँट पर लदे हुए सामान का संतुलन बिगड़ गया और सारा समान नीचे गिर गया। गिरने से शेष सब्जियाँ तो बच गईं पर कुम्हार के सारे बरतन चकनाचूर हो गए। बर्तन टूटने के बाद कुम्हार को भान हुआ कि यदि वो ऊँट को सब्जियाँ नहीं खाने देता तो उसके बर्तन भी नहीं टूटते लेकिन अब पछताना बेकार था। आज यही स्थित हम सबकी हो चुकी है। हम दूसरों का या सामूहिक नुकसान

रोकने के लिए बिल्कुल आगे नहीं आते और इसके परिणामस्वरूप हमारा जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष नुकसान होता है उसे वहन करने को अभिशप्त हैं। ये संपूर्ण विश्व हमारी सामूहिक संपत्ति ही तो है। इस पृथ्वी पर उपलब्ध सभी प्राकृतिक संसाधनों को बचाना हमारा ही दायित्व है। जो लोग इन्हें नष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं उन्हें रोकना भी हमारा ही दायित्व है।

आज हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि कुछ लोग देश छोड़कर स्थायी रूप से विदेशों में बसने के लिए जा रहे हैं। लेकिन सब लोग ऐसा नहीं कर सकते। यदि हालात और बिगड़े तो क्या होगा? हम क्या करेंगे? वास्तव में हम कुछ नहीं कर पाएँगे और घुट-घुटकर मर जाएँगे। प्रश्न उठता हे कि हम इसमें क्या कर सकते हैं। आज हमारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य खूब कमाना और खूब खर्च करना हो गया है। हमें अपने इस उद्देश्य को बदलना होगा। यदि हमने स्वयं को नहीं बदला तो हमारा नहीं तो हमारी अगली पीढ़ियों का घुट-घुटकर मरना निश्चित है। आज भी प्रतिवर्ष असंख्य व्यक्ति प्रदूषणजन्य व्याधियों के कारण अकाल-मृत्यु का शिकार हो रहे हैं। बीमारियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। हवा हो या पानी सब प्रदूषित हैं। खाद्य-पदार्थ विषाक्त होते जा रहे हैं। यदि कहीं कुछ बचा भी है तो वो मिलावट की भेंट चढ़ जाता है। साँस लेना मुश्किल होता जा रहा है।

एक उक्ति की एक पंक्ति याद आ रही है कि मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। आज हमारी स्थिति ठीक वैसी ही हो चुकी है। समस्या का स्थायी उपचार संसाधनों से संभव नहीं। हमें प्रकृति को नष्ट करने के दुष्चक्र को तोड़ना होगा। ये तभी संभव है जब हम अपनी जीवन शैली को परिवर्तित करें। हमें प्रकृति की ओर लौटना होगा। अपनी जीवनशैली को प्राकृतिक बनाना होगा। हमें वाहनों के प्रयोग में कमी लानी होगी। हमें कुछ दूरी के लिए बिना किसी वाहन की मदद के पैदल चलने की आदत डालनी होगी। इससे न केवल पर्यावरण सुधरेगा अपितु हमारा स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। हमें अपनी उत्सवधर्मिता पर भी रोक लगानी होगी। हर पर्व को सादगीपूर्ण ढंग से मनाने की आदत विकसित करनी होगी। आज हालात इतने बदतर हो चुके हैं कि एक अगरबत्ती अथवा धूपबत्ती का जलाना भी निरापद नहीं। कोई त्योहार कब मातम में बदल जाए कुछ नहीं कहा जा सकता।

आज कुछ भी सुरक्षित नहीं बचा है। खाद्य-पदार्थ हों अथवा दवाएँ हर चीज में मिलावट की जा रही है। नकली घी-तेल तैयार करके बेचे जा रहे हैं। साबुत मसाले हों या दालें अथवा फल-सब्ज़ियाँ सब पर हानिकारक रसायनों से पॉलिश की जाती है जिसका कोई औचित्य नहीं। हम नकली चीज़ें बेचकर दूसरों के जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे है लेकिन साथ ही दूसरों के

द्वारा तैयार की गई अन्य नकली चीज़ों का उपभोग करके स्वयं भी इस दुष्चक्र का शिकार हो रहे हैं। हम गलत तरीकों से पैसा कमाकर खुश तो हो रहे हैं लेकिन इस प्रक्रिया में स्वयं का विनाश भी सुनिश्चित कर रहे हैं। हमें गलत तरीकों से खूब पैसा कमाने और खर्च करने की प्रवृत्ति का त्याग करना ही होगा। हमें अपने हर प्रकार के निरंकुश उपभोग पर अंकुश लगाना होगा। हमें अनिवार्यतः अपरिग्रह का पालन करना होगा।

पिछले ढाई हजार साल से अपरिग्रह पर जोर दिया जा रहा है। उस समय पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नहीं थी तो भी अपरिग्रह पर जोर दिया जाता रहा। जिस सुंदर परिवेश अथवा प्रकृति का विकास लाखों वर्षों में हुआ है उसे अक्षुण्ण रखना अनिवार्य था अतः अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक वस्तुओं के उपभोग व संग्रह के निषेध को धर्म से जोड़ दिया गया। हमारी परिग्रह-वृत्ति के कारण ही आज संपूर्ण विश्व अशांत है। हम एक-दूसरे का शोषण करके व प्रकृति को नष्ट करके अथवा इसे नष्ट होने से रोकने का प्रयास न करके सबसे अधिक स्वयं की ही हानि कर रहे हैं इसलिए औरों के लिए न सही अपने स्वयं के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए ही सही हमें सचेत होना होगा और आज ही होना होगा। अन्यथा ये असंभव नहीं कि किसी दिन हवा में इतना जहर बढ़ जाए कि कोरोना की तरह तबाही मचा दे और यह सिलसिला रुकने का नाम ही न ले।

- ए.डी -106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली -110034 ।
मो. 9555622323

फिर जाते तो अच्छा था

- कृष्ण कुमार 'कनक'

आए थे कुछ देर बैठते फिर जाते तो अच्छा था।
अपने दिल की बात बताते फिर जाते तो अच्छा था।

कितना इंतजार झेला था तब जाकर तुम आए थे,
कुछ पल मेरे साथ बिताते, फिर जाते तो अच्छा था।

एक सदी की सारी यादें पल भर में जी लेता मैं,
यदि तुम सुनते और सुनाते फिर जाते तो अच्छा था।

तुमने मेरे तन को देखा मन की ओर निहारा कब ?
नजरें मन की ओर घुमाते, फिर जाते तो अच्छा था।

बाँहों ने बाँहों को देखा बेवश थीं कुछ कह न सकी,
बाँह नहीं बस हाथ मिलाते फिर जाते तो अच्छा था।

आशा भरे नयन थे मेरे तृप्ति तुम्हारे तन में थी,
यदि आशा की प्यास बुझाते फिर जाते तो अच्छा था।

जैसे नदी बाढ़ में आती बस वैसे ही आए तुम,
यदि सागर की तह तक आते, फिर जाते तो अच्छा था।

तुम हो निशा और मैं जुगनू सदियों रहा साथ अपना,
फिर से थोड़ा साथ निभाते फिर जाते तो अच्छा था।

माना तुमने फर्ज निभाया मेरे नेह निमंत्रण पर,
अधरों से अधरों तक आते फिर जाते तो अच्छा था।

'कनक' पूछते मेरे दिल पर अब तक क्या-क्या बीती है,
अपनी बीती मुझे बताते फिर जाते तो अच्छा था।

- सम्पादक - "कनक काव्य कुसुम" (वार्षिक पत्रिका), 'कनक-निकुँज',
गाँ. व पो. गुँदाऊ, ठार मुरली नगर, थाना लाईन पार, फिरोजाबाद (उ.प्र.)

कैसी दिवाली है ?

- कृष्णाचन्द्र टवाणी

मानवता अब नहीं धरा पर फिर कैसी दिवाली है ?

सकल प्रदूषण वसुधा पर मिटती जाती हरियाली है।
सकल मिलावट सभी जगह जीवन सारा बदहाली है।।
मंहगाई की मार सह रही जनता भोली भाली है।
माथे पर गमी की लकीर तब कैसी दिवाली है?

मयखानों में भीड़ उमड़ती मंदिर सारे खाली है।
डरता नहीं कानूनों से कोई घोटालों की भरमारी है।।
दंगे फसाद कराते नेता जनता फंसती बेचारी है।
चारों ओर भ्रष्टाचार का अंधेरा ये कैसी दिवाली है ?

रक्षक भक्षक बने देश के करते नहीं रखवाली है।
लूट मार होती आये दिन पुलिस करत मनमानी है।।
भेंट बिना ना होय काम करते अफसर सरकारी है।
मिटा परस्पर प्रेम भाव फिर ये कैसी दिवाली है ?

राजनैतिक पार्टियाँ अनेक, पर ईमानदारी से खाली है।
सब्जबाग दिखा वोट बटोरते, वादें जाते खाली हैं।।
अब तो चेतो मतदाता सच्चे नेताओं को विजयी बनाओ।
शासन बना कुशासन तो फिर कैसी दिवाली है ?

- प्रधान संपादक "अध्यात्म अमृत", ज्ञानमंदिन,
मदनगंज-किशनगढ़, (राज) - 305801
मो. 09252988221

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : विनय सप्तक
लेखक : आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'
प्रकाशक : सतीश कुमार गुप्त, जोगियाना, लोरपुर रोड़, शहजादपुर-अकबरपुर (224122)
संस्करण : प्रथम – २०२३
पृष्ठ संख्या : ३२
मूल्य : ४० रुपये मात्र

ग्रन्थकार का मानना है कि सद्‌बुद्धि का विकास मनुष्य में परमात्मा की अनुकम्पा के बिना सम्भव नहीं। सद्‌बुद्धि के ह्रास/बुद्धि के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास निरन्तर होता है। परमात्मा की कृपा से सत्व बृद्धि से बौद्धिक विकास परमार्थ अर्थात् जनकल्याण की ओर अग्रसर होता है और इसके विपरीत कल्याण हानि निश्चित है। इसी धारणा के कारण कवि ने 'विनय-सप्तक' नाम से स्तोत्रावालि लिखी है जो कि सात स्तोत्रों पर आधारित है।

इस स्तोत्रावालि मे 'श्रीमहालक्ष्मी कृपा स्तोत्र, श्रीसरस्वती कृपास्तोत्र, श्रीजानकी कृपाकटाक्ष स्तोत्र, श्रीराधा कृपास्तोत्र, श्री अन्नपूर्णा स्तोत्र, श्री तुलसी वन्दन और श्री महाकाली कृपास्तोत्र ये सात स्तोत्र संगृहीत हैं।

इन उपर्युक्त स्तोत्रों में साधक की रुचि को ध्यान में रखते हुए सगुण ब्रह्म की उपासना निहित है। निर्गुण ब्रह्म तक पहुँचने के लिए भक्तिमार्ग भक्तियोग ही सरलतम उपाय है। ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग में विशेष प्रवृत्ति तो उन्हीं लोगों की देखी जाती जो पूर्वजन्म में परमार्थ मार्ग पर चलते हुए वर्तमान में प्रारब्ध के अनुसार इस शरीर को धारण करते हैं और अपने तथा समाज के निमित्त जीवन यापन करते हैं तथा अपने कर्मों से समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। श्रद्धानुरूप भक्तिमार्ग पर प्रय: वे उपासक हैं जो सामान्य वर्ग में आते हैं और पूर्णनिष्ठा से भजन/कीर्तन के माध्यम से परमात्मा को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं।

स्तोत्र रचनाकार ने, प्रतीत होता है कि भक्तिमार्ग पर निष्ठा रखने वाले उपासकों को दृष्टि में रखकर उक्त स्तोत्रों की रचना की है। यद्यपि ईश्वर/देवी/देवताओं की उपासना के लिए संस्कृत भाषा में स्तोत्ररत्नावलि जैसे ग्रन्थ अनेक रूप में आज भी उपलब्ध हैं तथापि एक सामान्य व्यक्ति जो संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ है उसके कल्याणार्थ निश्चित यह पुस्तक उपकारक सिद्ध होगी।

लेखक की संस्कृत भाषा में गहरी-निष्ठा से ज्ञात होता है कि वे हिन्दी में स्तोत्र लिखते-लिखते संस्कृत देववाणी में भी स्तोत्र लिखते गये जो कि प्रशंसनीय कर्म है।

– प्रो. प्रेमलाल शर्मा, शास्त्रचूड़ामणि, वी.वी.आर.आई,
साधु आश्रम, होशियारपुर

संस्थान-समाचार

दान-

Dr. S. K. Rehani, 1617, Sector 44-B, Chandigarh 5000/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

बधाई-

संस्थान के वित्त विभाग के कर्मिष्ठ श्री शंकर दास (मास्टर जी) की पौत्री आयुष्मती मृणाली (सुपुत्री श्रीमती परवीन कुमारी एवं श्री कृष्ण किशोर) का शुभ विवाह आयुष्मान् शिवम् अगिंरस के साथ दिनांक 28-11-2023 को होशियारपुर में संपन्न हुआ। नव-विवाहित दम्पती सुखी, स्वस्थ व सानन्द रहे, यही संस्थान के सभी कर्मिष्ठो की ओर से शुभकामना है। सभी की ओर से संबंधित परिवार को इस शुभ अवसर पर बहुत-बहुत बधाई।

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥
(रामा. 1, 121)

मनुष्य का उत्साह ही परम बल होता है। उत्साह से बढ़कर और कोई शक्ति इस संसार में नहीं है। उत्साह वाले मनुष्य के लिए संसार में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

प्रयोजक :

सर्वश्री बैजनाथ भण्डारी सार्वजनिक धर्मार्थन्यास

ई-२२, डिफैन्स कालोनी,

नई दिल्ली-११००२४

न कालः कालमत्येति न कालः परिहीयते।
स्वभावं च समासाद्य न कश्चिदतिवर्तते॥
(रामा. 25, 6)

काल भी अपनी व्यवस्था का उल्लंघन नहीं कर सकता। काल कभी नष्ट भी नहीं होता। अपने प्रारब्ध को पाकर कोई भी प्राणी काल का अतिक्रमण नहीं कर सकता।

स्वर्गीय परमपूज्य पिताश्री पं. अमरनाथ जी शास्त्री

की पुण्यस्मृति में समर्पित

प्रयोजक :

प्रो. उमेशचन्द्र शर्मा, पी.ई.एस. (I) रिटायर्ड,

(पूर्व प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कॉलेज होशियारपुर)

ईशा निवास, शिव-शक्ति नगर, होशियारपुर।

किं तु कालपरिणामो द्रष्टव्यः साधु पश्यता।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च कालक्रमसमाहिताः॥

(रामा. 25, 8)

विवेकशील मनुष्य को संसार में सब कुछ काल का परिणाम ही समझना चाहिए। हमें धर्म, अर्थ और काम भी काल के अनुसार ही मिलते हैं।

सादा जीवन और उच्च विचार की सजीव प्रतिमा एवं मनसा, वाचा, कर्मणा आर्यसमाज के प्रति समर्पित अपने पति

स्व. डॉ. राजेन्द्रपाल जी महता

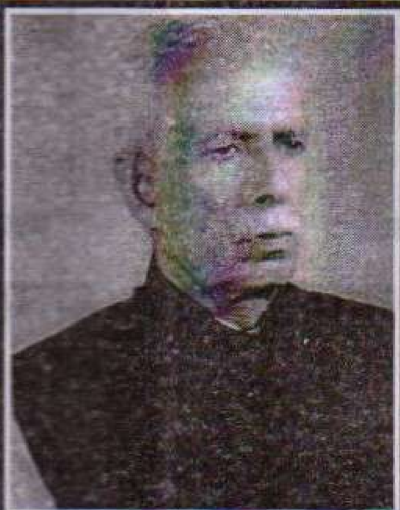

की पुण्यस्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती मीना महता

राम नगर, होश्यारपुर।

न कालस्यास्ति बन्धुत्वं न हेतुर्न पराक्रमः।
न मित्रज्ञातिसम्बन्धः कारणं नात्मनो वशः॥
(रामा. 25, 7)

काल का किसी के साथ भाई-बिरादरी का, मित्रता का या जाति आदि का कोई सम्बन्ध नहीं होता। उसे कोई वश में नहीं कर सकता। काल पर किसी का भी पराक्रम नहीं चल सकता।

स्व. श्री आर. एल. लाम्बा — 12. 12. 2008 (पिता जी)

स्व. श्रीमती रामरखी लाम्बा — 6. 9. 2009 (माता जी)

की
पावन स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

डॉ. मंगतराम लाम्बा एवं वन्दना लाम्बा

लाम्बा सदन,
धर्मपुर (जिला सोलन), हि. प्र.

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-११-२०२३ को प्रकाशित।